

ऋषभदेव : एक परिशीलन

लेखक

परम शब्दों व म० श्री पुष्कर मुनि जी म०

के सुशिष्य

देवेन्द्र मुनि धारवा, 'साहित्यरत्न'

श्री सन्मति ज्ञान प्रो. डा०

पुस्तक प्रकाशन के साथ-सहयोग

- १ श्री जगन्नाथराम जी भण्डारी जी कुवाडा जतपुर जि पाली
- २ श्री मुसतानमन जी मीरमचन्द जी मानससर जि बाइभर
- ३ श्रीमती सुनीता पारसमन बोहरा जयपुर
- ४ श्रीमती शान्ता सिद्ध स्वर नाथ मोदी जयपुर



पुस्तक

जगन्नाथराम एक परिशीलन

भूमिका

जगन्नाथराम भण्डारी

लेखक

श्री देवेन्द्र मुनि

प्रकाशक

सम्मति ज्ञानपीठ

लोहागंजी बागदा-५

प्रथम संस्करण

सन् १९६७

मुद्रक

श्री किशोर प्रिण्टर्स प्रल

राजागंजी बागदा-२

ऋषभदेव : एक परिशीलन

० प्रथम खण्ड

० ऋषभ जीवन की दृष्ट झुनि

पन्ना निर्माण ६५

यस सभ्यता के उक्त मूल पुरुष को, उनके जीवन-मार्ग को विभिन्न
शास्त्रों ने अन्वेषण कर तदुद्देश्य से समझने-बखाने की आज अत्यन्त आवश्यकता

प्रकाशकीय

आर्यसंस्कृति व आदिपुरुष भगवानऋषभदेव की जीवन-गाथा कथा और संस्कृति, शिक्षा और माहित्य, धर्म और राजनीति का आदि-स्रोत है। आर्य संस्कृति का वह महाप्राण व्यक्तित्व दो युगों का सन्धि-काल है, जब अन्तम से जीवन में जड़ता छा रही थी और भोग्यमयि ने जीवन को निःसत्त्व बना रखा था, तब ऋषभदेव कर्म-युग के आदिसूत्रधार बने, अकर्म को कर्म की श्रार प्ररित किया, भोग को योग से परिष्कृत करने की कला मिललाई। पुनर्पार्थ जमा, कला का विकास हुआ, समाज की रचना हुई, राज्य शासन का निर्माण हुआ, और धर्म एक संस्कृति की पावन रेखाएँ आकार पाने लगी।

जैन, बौद्ध और वैदिक—तीनों परम्पराओं में भगवान ऋषभदेव की महिमा के स्वर प्रतिध्वनित होते सुनाई देते हैं और यह प्रतिध्वनि आर्य-संस्कृति की मौलिक एकता का अवयव चिन्ह है। भले ही ऋषभदेव के विराट व्यक्तित्व को विभिन्न परम्पराओं में विभिन्न दृष्टियों से देखा हो किन्तु उसमें उनका महानता और सर्वव्यापकता में कोई अन्तर नहीं आता। विभिन्न दिशाओं में बसने वाले यदि हिमालय या सुमेरु के विभिन्न भागों को देखकर अपनी-अपनी दृष्टि से उसका वर्णन कर तो उससे हिमालय या सुमेरु की महान सत्ता में कोई अन्तर नहीं पड़ता, बल्कि उसकी सार्वदेशिकता का ही प्रमाण मिलता है।

आर्य संस्कृति के उस मूल पुरुष को, उनके जीवन-स्रोत की विभिन्न धाराओं में अवगाहन कर गहराई से समझने-परखने की आज अत्यन्त आवश्यकता

है। हम प्रसन्नता है कि परम अख्य य १० श्री पुष्कर मुनिजी महाराज के शिष्य उदीयमान साहित्यकार श्री देवप्र मुनिजी शास्त्री ने इस दिशा में यह एक महनीय प्रयत्न किया है। उन्होंने अनेक ग्रन्थों का परीक्षण करके भगवान् प्रपभदेव के महान् कर्तृत्व को जिस संक्षेप किन्तु प्रामाणिक और तुलनात्मक शाली से प्रस्तुत किया है वह वस्तुतः अभिनन्दनीय ही नहीं किन्तु अनुकरणीय भी है।

साथ ही अस्वस्थ होते हुए भी अख्य उपाध्याय श्री जी न भगवान् आदिनाथ के महाप्राण व्यक्तित्व के विचार विन्दु को मनीन दृष्टि-परिवश में उपस्थित कर जो महत्वपूर्ण प्रस्तावना से ग्रन्थ की श्रीवृद्धि की है उसके लिए भी हम उनके प्रति हार्दिक ऋतज है।

सन्मति ज्ञानपीठ के महत्वपूर्ण प्रकाशन आज साहित्य क्षेत्र में अत्यधिक आदर एवं गौरव प्राप्त कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि यह प्रकाशन भी हमारी उसी गौरवमयी परम्परा की एक कड़ी बनेगा। पाठक इसे अधिकाधिक अपनाकर हमारा उत्साह बढ़ायेगे। इसी भाषा के साथ

मन्नी

सन्मति ज्ञानपीठ





भारतवर्ष के जिन महापुरुषों का मानव जाति के विचारों पर स्थायी प्रभाव पड़ा है उनमें भगवान् ऋषभदेव का प्रमुख स्थान है। उनके अनलोदित व्यक्तित्व और अमाध्यम्य ऽ अमृतपूर्व कृतित्व की छाप जन-जीवन पर बहुत हो गहरी है। आज भी अनेकों व्यक्तियों का जीवन उनके निर्मल विचारों से प्रभावित है। उनके हृदयाकाश में चमकते हुए आकाशदीप की तरह वे गुणोभित हैं। जैन व जैनतर साहित्य उनकी गौरव-गाथा से झलक रहा है। उनका विराट व्यक्तित्व सम्प्रदायवाद, पथवाद से उन्मुक्त है। वे वस्तुतः मानवता के कीर्तिस्तम्भ हैं।

भगवान् ऋषभदेव का समय भारतीय ज्ञात इतिहास में नहीं आता। उनके अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए आगम ऽ आगमेतर प्राच्य साहित्य ही प्रबल प्रमाण है। जैन परम्परा की दृष्टि से भगवान् ऋषभदेव वर्तमान अवसर्पिणी काल के तृतीय आरे के उपसंहार काल में हुए हैं।^१ श्रीबोधिवे तीर्थङ्कर भगवान् महावीर और ऋषभदेव के बीच का समय अन्धकार वर्ष का है।^२

वैदिक दृष्टि में भी ऋषभदेव प्रथम मत्स्युग के अन्त में हुए हैं और राम व कृष्ण के अवतारों से पूर्व हुए हैं।^३

जैन साहित्य में कुलकर्णों की परम्परा में नाभि, और ऋषभ का जैसा स्थान है, जैसा ही स्थान बौद्ध परम्परा में महासमन्त का है।^४ सामयिक परिस्थिति भी दोनों में समान रूप से ही चित्रित हुई है। सम्भवतः बौद्ध परम्परा में ऋषभदेव का ही अপর नाम महामन्त हो ?

१ जम्बूद्वीप प्रज्ज्ति
(ख) कल्पसूत्र

२ कल्पसूत्र

३ जिनेन्द्र मत दर्पण भाग० १ पृ० १०

४ नीलमिकाय अभ्यञ्जमुत्त भाग-३

(ख) जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग० १ प्रस्तावना पृ० २२

ऋषभदेव का चरित्र जिस प्रकार जन और बौद्ध साहित्य में विस्तार से चित्रित किया गया है वसा बौद्ध साहित्य में नहीं हुआ। केवल कहीं-कहीं पर नाम निर्देश किया गया है। जैसे धम्मपद की उसमें पवर और गाथा में अस्पष्ट रीति से ऋषभदेव और महावीर का उल्लेख हुआ है।^१ बौद्धाचार्य भूम कीर्ति ने सवन आप्त में आहरण में ऋषभ और बद्धमान महावीर का निर्देश किया है और बड़ाचार्य ज्ञानेश्वर भी ऋषभदेव को ही जैन धर्म का प्राचीन प्रचारक मानते हैं।

आधुनिक प्रतिमासंग्रह भूषण्य विचारक या य मय्य तय्य निमज्जाव ह्य स स्वीकारने लगते हैं कि भगवान् ऋषभदेव ने ही जैन धर्म का प्राग्भावि हुआ है।

डाक्टर हमन ठाकुराणी लिखते हैं कि हममें का प्रमाण नहीं कि पार्श्वनाथ जन धर्म का परमापक थे। जैनग्रन्थों में प्रथम गौरवकर ऋषभदेव का जैन धर्म का संस्थापक मानने में एक मत है। हम मान्यता में ऐतिहासिक सत्य की अत्यधिक सम्भावना है।^२

प्रस्तुत ग्रन्थ पर विचार करने हुए डाक्टर राधाकृष्णन् लिखते हैं कि 'जैन परम्परा ऋषभदेव ने अपने धर्म की उत्पत्ति का कदम करती है जो बहुत ही पुरानी है। हम बात के प्रमाण पाते हैं कि ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव की स्थापना होती थी। 'समे को' सन्देह नहीं कि जैन धर्म बद्धमान महावीर और पार्श्वनाथ ने भी बहुत पहले प्रचलित था।

यजुर्वेद में ऋषभदेव अजितनाथ और अग्निमित्र इन तीनों तारक करीब नाम आते हैं। भागवत पुराण भी इस बात का समर्थन करता है कि ऋषभदेव जैन धर्म के संस्थापक थे।

१ धम्मपद ४।

२ इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टली भाग पृ ४३-७१

३ इण्डि एजिबि बिद ६ पृ० १६१

(स) जैन साहित्य का इतिहास—पूवपीठिका पृ ५

भारतीय दर्शन का इतिहास—डाक्टर राधाकृष्णन् लिख १ पृ २८७



त्वं देव जगता ऋषि

त्वं देव जगतां गुरु ।

त्वं देव जगतां माता

त्वं देव जगतां पति ॥

—आचार्य विनोद



प्र स्ता व ना



अनन्त असीम व्योममण्डल में भी बिगड़ ! अगाध अपार महामागर में भी बिगड़ ! एक बद्धभुत, एक अद्वितीय ज्योतिष्य व्यक्तित्व ! त्रिपुर में भी दिग, जहाँ भी देखिए, और जव भी देखिए—महत्त्व-महत्त्व, नक्ष-नक्ष, धादि-कोटि, अमन्य अनन्त प्रकाश किन्तु विरीणं हाती दीगशी । महाभाग इतिहास की गणना में परे हो गया, मान्यातीत दिन और रात गुजरत चले गए, परन्तु यह ज्योति न तुझी है, न बुझ सकेगी ।

भगवान् ऋषभदेव के व्यक्तित्व और कृतित्व को जव्दा की सीमा में नहीं, दाँधा जा सकता । प्राकृत में, मरुत में, अपभ्रंश में, नानाविध अन्वय मोरुभाषाभा में ऋषभदेव ने अनेकानेक जीवन चरित्र लिखे गए हैं, लिखे जा रहे हैं, परन्तु उनके बिगड़ गए मध्य जीवन की सम्पूर्ण छवि रोई भी प्रकट नहीं कर सका है । अनन्त आकाश में गरुड—जैसे अमन्य विहग जीवन-भर उड़ान भरने रहे हैं, पर आकाश की व्यस्तता का अता-पता न किसी को लगा है, न लगेगा । क्या भौतिक और क्या मोकोत्तर, क्या भौतिक और क्या आत्मात्मिक, क्या सामाजिक और क्या राष्ट्रीय, क्या नैतिक और क्या धार्मिक—मभी हँडियाँ में उनका जीवन दिव्य है, महतीमहीयाम् है । हम जीवन-निर्माण की दिशा में जब भी-और जो झुठ भी पाना चाह, उनके जीवन पर से पा सकते हैं । आवश्यकता है केवल देखने वाली शक्ति ही और उस दृष्टि को सृष्टि के रूप में अवतरित करने की ।

भगवान् ऋषभदेव मानवसंस्कृति के आदि संस्कर्ता है, आदि निर्माता है । पौराणिक गाथाभा के आधार पर, वह ज्ञान, आज भी हमारे मानस-चक्षुओं के समक्ष है, जत्र कि मानव मात्र आश्रित में ही मानव था । अपने क्षुद्र देह की सीमा में उधा हुआ एक मानवाकार पशु ही तो था, और क्या ? न उसे लोक का पता था, न परलोक का । न उसे समाज का पता था, न परिवार का । न उसे धर्म का पता था, न अधर्म का । विन्तुन कटा हुआ-सा अकेला

शून्य जीवन । पिता पुत्र भाई रक्षित पति-पत्नी—जसा कुछ श्री लोक-व्यवहार नहीं कोई भी मर्यादा नहीं । साथ रहने वाली नारी को हम भसे ही आज की शिष्ट भाषा में पत्नी कहें व परन्तु सचाई तो यह है कि वह उस युग में एकमात्र नारी थी स्त्री की और कुछ नहीं । स्त्री वेधत देह है और पत्नी इससे कुछ ऊपर है । पति-पत्नी दो अरीर नहा है जो वासना के माध्यम से एक दूसरे के साथ जुटने हैं । व एक सामाजिक एवं नैतिक बाध है जो जनसंख्या की स्वतंत्रताओं में मर्यादाबद्ध है । और यह सब उस आदि युग में कहा था ? वन की सम्पत्ता । अनेक व्यक्तित्व । शून्य गरीबी सा इधर उधर गया वन्द मूल फल खा आया । प्यास लगी तो भरना का बहाना पानी पी आया । अन्य किसी के लिए न जाला और न न जाना । न मस्तिष्क के लिए कोई बुद्धि संग्रह । अनीति और अन्याय से कट कर केवल जनसंख्या में आबद्ध । अपने ही में ही दया पिपासा से भरा केवल व्यक्तिनिष्ठ जीवन । प्रकृति पर आधिपत्य वृक्षों से परिपोषित । वनस्पति नहीं वेधन मोक्षवृत्ति । धर्म नहीं परार्थ नहीं । न अपने परो लबा होना और न अपने हाथों कुछ करना । मनस्य व शरीर में नीचे लघातुर पैर और ऊपर लाने वाला मुख । बीच में हाथ परो का कोई खास काम नहीं उत्पादन के रूप में । यह बिना है मन्वान् अधमदेव से पूर्य मानव सम्पत्ता का ।

मन्वान् अधमदेव के युग में यह वन-सम्पत्ता बिखर रही थी । जनसंख्या बढ़ने लगी । उपभोगिता अधिक होने लगे थे परन्तु उनकी कुलना में उपभोगसामग्री अल्प । ऐसी स्थिति में मर्षण अवश्यम्भावी था और वह हुआ भी । लघातुर जनता वृक्षों के वैटवारे के लिए लड़ने लगी । सब ओर आपाधापी मच गई । मन्वान् अधमदेव ने उक्त विषम स्थिति में अभावग्रस्त जनता का योग्य नेतृत्व किया । उन्होंने घोषणा की—अर्धमूमि का युग समाप्त हो रहा है अब जनसंख्या को कममूमि युग का स्वागत करना चाहिए । प्रकृति रिक्त नहीं है । अब भी उसका जल में अक्षय भण्डार छिपा पड़ा है । पुरुष हो पुरुषार्थ करो । अपने मन मस्तिष्क से मोची-विचारों और उठे हाथों से मूर्तरूप दो धर्म में ही थी है अव्यय नहीं । एवं मुक्त है पाने वाला तो हाथ दो है सिलान वाले । मृगा मरने का प्रश्न ही कहाँ है ? अपने धर्म के बल पर अभाव को भाव से भरे दो । मन्वान् अधमदेव ने कृषि का सूत्रपात किया । अनेकानेक नित्यो की मकतारणा की । कृषि और उद्योग में यह अरभुत सामग्य स्थापित किया कि धरती पर स्वयं उतर आया । कमयोग की यह

रसधारा बही नि उबड़ते और वीरान हाते जन-जीवन में गव आर नव-यम-त
विल उठा, महक उठा । हे मेरे देव, यदि उस समय तुम न हाते तो पता नहीं,
इस मानव जाति का क्या हुआ होता ? होता क्या, मानव-मानव एक दूसरे के
लिए दानव हो गया होता, एक दूसरे को जन्मी जानवगे की तरह भा गया
होता । 'बुभुक्षित कि न करोति पाप्मम् ?'

भौतिक वैभव एवं ऐश्वर्य के उत्कर्ष में एक गतंग है, वह यह कि मनुष्य
स्वयं को भूल जाता है, अन्धरे में भटक जाता है । भाग में भय छिपा है,
"भोगे रोगभयम् ।" तन का रोग ही नहीं, मन का रोग भी । मन का रोग तन का
रोग से भी अधिक भयावह है । यकती हुई मन की विवृण्विः मानव को कहीं रा
भी नहीं छोड़ती—न घर का न बाट का । भगवान् श्रृपभदेव ने इस तथ्य पर
भी ध्यान में रखा । उनका गृहसंसार में महाभिनिष्क्रमण अपनी अन्तर्गतामा
का परिमार्जित एवं परिशुद्ध करने के लिए ता था ही, साथ ही मानवजीवन
हित का भाव भी उसके मूल में था । महागुणों की गाधना स्व-परफल्याण की
शक्ति में दृ-पर्यंक होती है—"एका किंवा दृ-पर्यकरा प्रमिद्धा ।" भगवान् श्रृपभदेव
ने मृग्य मिजन बनो में, एफान्त निरि-निकुञ्जों में, भयावह पण्डानों में, गगन-
कुम्भी पयसो की गगन नीरव सुफल्यों में तप साधना की । यज्ञ तप अही घास रूप
में ऊँचा और बहुत ऊँचा था वहाँ आभ्यन्तर रूप में गहरा और बहुत गहरा
भी था । व शरीर में परे, इन्द्रियों में परे और मन में परे होते गए—होने गए,
और अपने आपके निकट, अपने श्रुद्ध—निरजल—निर्विकार स्वरूप के समीप
पहुँचने गए—पहुँचने गए । और सम्भी साधना के बाद एक दिन वह मगल
अण आया कि अन्तर में कैवल्य ज्योति का अनन्त अक्षय-अव्याय महाप्रकाश
जगमगा उठा, स्वमगल के साथ ही विद्वमगल का द्वार खुल गया । भगवान्
श्रृपभदेव तीयद्वार बन गए । 'मदेवता के रूप में उनकी अमृतवाणी का वह
दिव्यवाद सुँबा कि जन-जीवन में फैलता आ रहा अन्धकार छिन्न-भिन्न होगया,
मन और आध्यात्मिक भावों का दिव्य आलोक आलोकित हो गया ।

भगवान् श्रृपभदेव का जीवन समन्वय का जीवन है । वह मानवजाति के
ममल दहनोक का आदश प्रस्तुत करता है, परलोक का आन्तर प्रस्तुत करता है,
और प्रस्तुत करता है—दहनोक-परलोक से परे नोकोत्तरता का आदश ।
उनका जीवन-दर्शन उभयमुखी है । जहाँ वह वास्तुजीवन को परिष्कृत एवं
निरुसित करने की बात करता है, वहाँ अन्तर्जीवन को भी विशुद्ध एवं प्रशुद्ध

रखने का परामर्श देता है। उनका अध्यात्म भी निष्क्रिय ब्रह्म एवं एकांगी नहीं है वह सचेतन है प्राणवान है और वेस काल एवं व्यक्ति की भूमिकाओं की यथाथ के घरायल पर स्पर्श करता है। इस सन्दर्भ में उनके अपने ही जीवन के एक दो प्रसङ्ग हैं।

साधना-काल में जब भगवान् अपनी एवं पहाड़ों के सूने घाटों में एकान्त साधनारत रह रहे थे तो प्रारम्भ में एक वर्ष तक उन्होंने अन्न जल ग्रहण नहीं किया अनशनरत की उन्नी साधना चमत्की रही। प्रभु के लिए तो यह सहज था परन्तु साथ में शीनित होने जाने चार सहस्र साधक विचलित हो गए। वे भूख की वेदना को अधिक काल तक सहन न कर सके। भगवान् की देखादेखी कुछ दूर तक तो अनशन के पथ पर साथ साथ चले परन्तु गणराज की गति को कोई पकड़े भी तो कहा तक पकड़े ? सब के सब पिछड़ते चले गये कोई कही तो कोई कही। पिछड़े ही नहीं पथ भ्रष्ट भी हो गये। विवेकज्ञान के अभाव में ऐसा ही कुछ हुआ करता है—देखा-देखी साथ ओंख छोड़ी काया बाध रोग। भगवान् नृपमदेव ने वर्ष समाप्त होने-गोने जब यह देखा तो उनका चिन्तन मोड़ ले गया। उन्होंने बाह्य ग्रहण करने का संकल्प किया अपने लिए अपना नहीं जितना कि भविष्य के साधकों को साधना के मध्यम भाग की दृष्टि प्रदान करने के लिए। भगवान् के तत्कालीन अनन्तर चिन्तन को अक्षरबद्ध किया है—जन दसन के सुप्रसिद्ध गत्वचिन्तक महामनीषी आचार्य जिनसेन ने अपने महापुराण में—

न केवलमत्र काल कसनीयो मुमुक्षुभिः ।
 नाऽप्युत्कृष्टरतौ बोध्यो सुखरिष्टश्च बन्धन ॥५॥
 यतो यथा स्मुरक्षाणि नीतं वाचस्पत्युत्पद्यम् ।
 तथा प्रयतितव्यं स्यात् कृतिवाचित्य मध्यमायु ॥६॥
 शीपनिहरणामेष्टा उपवासोऽप्ययम् ।
 प्राणतन्मारणायामयु आहार सुधवस्ति ॥७॥
 कामयनेषो अतस्त्वायन् न सत्तेजोऽस्ति याचता ।
 सत्तेजो ह्यसमाधानं मार्गम् प्रज्युतिरेव च ॥८॥

—पर्व २

—मुमुक्षु साधकों को यह धरीर न तो नवस कृष्ण एवं शीण ही करना चाहिए और न रसीले एवं मधुर मन चाहे गोत्रों से इने पुष्ट ही करना चाहिए।

—जिस तरह भी ये इन्द्रियों साधक के वशवर्ती रहें, कुमाय की ओर न दोड़े, उसी तरह मध्यम वृत्ति का आश्रय लेकर प्रयत्न करना चाहिए।

—दोषों को दूर करने के लिए उपवास आदि का उपक्रम है, और प्राण धारणा के लिए बाह्यार का ग्रहण है, यह जैन मिथ्यान्तमम्मत माधना गूढ है।

—साधक को कर्मक्लेष तप उतना ही करना चाहिए, जितन में अन्तर में मयनेस न हो। क्योंकि सक्लेस हो जाने पर चित्त समाधिस्थ नहीं रहता, उद्विग्न हो जाता है, जिसका किमी न किमी दिन यह परिणाम आता है कि साधक पवध्रष्ट हो जाता है।

भगवान् ऋषभ के द्वितीय पुत्र महावसी बाहुवसी, युद्ध में अपन गच्छ मन्धु भरतचक्र-वर्ती को पराजित करके भी, राग्यासन से विरक्त हो गए। कापोरमर्ग मुद्रा में अजल हिमाबल की तरह अविचल एकान्त वसप्रवेण में पड़े हो गए। एक वष पूरा होने को आया, न अन्न का एक दाना और न पानी की एक बूँद। न हिलना, न झुमना। सचेतन भी अचेतन की तरह मयथा मिश्रकम्प। कषाकारो की भाषा में मस्तक पर के केश बढ़ते-बढ़ते जटा हो गए और उनमें पत्नी नीच चलाकर रहने लगे। घुटनों तक ऊँचे मिट्टी के बरुमीक बंध गए, और उनमें निपधर गर्भ निवास करने लगे। कभी-कभी तप बरुमीक से निकलते, सरसराते ऊपर बंध जाते और ममश शरीर पर नीला-बिहार करते रहते। धूमि से अकुरित नताएँ पदयुगल को परिवेष्टित करती हुई भुजयुगल तक लिपट गई। इतना होने पर भी कैवल्य नहीं मिला, नहीं मिला। तप का क्षाप परमविन्दु पर पहुँच गया, फिर भी अन्तर का कल्मष गला नहीं, मन का मालिन्य धुला नहीं। इतनी अधिक उग्र, इतनी अधिक कठोर साधना प्रसिफल की विद्या में शून्य क्यों, यह प्रश्न हर साधक के मन पर मड़राने लगा। भगवान् ऋषभदेव ने ब्राह्मी और सुन्दरी को भेजा, इसलिए कि वह बाहर से अन्दर में प्रवेश करे, अन्दर के वह को रोड गिराए। ब्राह्मी और सुन्दरी के माध्यम से भगवान् ऋषभदेव का सन्देश मुखरित हुआ।

“आज्ञापयन्ति सातस्तथा, ज्येष्ठार्य। भगवानिदम्।

हस्तिष्कन्वाधिरुहानास्व उत्पद्यते न केवलम् ॥”

—त्रिपिटि० १।६।७८८

—हे आर्य, पूज्य पिता भगवान् ऋषभदेव तुम्हें सूचित करते हैं कि हाथी पर चढ़े हुए को केवल ज्ञान नहीं हो सकता।

कैसा हाथी ? मैं बड़ा हूँ अपने से छोटे बन्दुजों को कैसे बन्दन करूँ — यह अहङ्कार का हाथी । इसी हाथी पर से नीचे उतरना है । बाहुवली के चिन्तन ने अहं से निरक्त की ओर मोड़ लिया और अ्याही बदन के लिए कदम उठाया रिक्त बलवान का महाप्रकाश जगमगा उठा । उक्त उपाहरण स क्या ध्वनित होता है ? यहा कि भगवान् ऋषभदेव साधना न केवल बाह्य परिवर्तन तक ही प्रतिबद्ध नहीं । उनकी साधनाविषयक प्रतिबद्धता बाहर की नहीं अन्दर की थी । उनका साधना का मुख्य आधार तब नहीं मन था । मन भी क्या अन्तस्वतन्त्र था । और भगवान् का यह दिव्य दशन जनसाधना का बीज बन हो गया । आन्तिकाल से ही जन दर्शन तब का नहीं मन का दर्शन है अन्तस्वतन्त्र का दर्शन है । यह साधना के बाह्य पक्ष को स्वीकारता है अवश्य परन्तु अमुक सीमा तक ही । बाह्य सान्त्वना अन्तर ही अन्तर है । यत जनमन की उपलब्धि बाहर न नहीं अन्दर में है । जब जब साधक बाहर भटकता है बाहर को ही सब कुछ मान बैठता है तब-तब भगवान् ऋषभदेव के जीवन प्रसङ्ग साधक को अन्दर की ओर उन्मुख करते हैं हठ योग से सहज योग की ओर अवसर करते हैं ।

भगवान् ऋषभदेव की निमल धर्मचेतना आज की भाषा में कहे जान वाला पद्यो—मत्तो—सम्प्रदायो से सबसे अतीत थी । उनका सत्य इन सब अज्ञ परिधेशो में बद्ध नहीं था । जब कभी प्रसंग आया उन्होंने सत्य के इस मन को स्पष्ट किया है—बिना किसी द्विषाण और दुराज के । राजकुमार मरीचि भगवान् के पास आईती दीक्षा ग्रहण कर लेता है पर समय पर ठीक तरह साथ नहीं पाता है । तितिक्षा की गम्भीरी परीकहो के आत्ममनः विचलित हो गया तो पन-भ्रुत हो गया परिजाबक हो गया । इस पर सम्मनः और सबन भिकारा हो परन्तु भगवान् सर्वतोमानन उदत्क रहे । मरीचि जन भयम-परम्परा न विपरीत परिजाबक का जाना लिए समयसरण के द्वार पर बैठा रहता परन्तु इधर से कोई ननुनन नहीं । इसका ही नहीं एक बार मरत चक्रवर्ती के प्रश्न न समाधान में घोषणा की कि मरीचि वर्तमान कालचक्र का अन्तिम तीरधूर होगा । अमन परम्परा से उत्पन्नित व्यक्ति के लिए भगवान् की यह घोषणा एक गम्भीर अर्थ को ओर सकेत करती है । वेध और पन्ध की सीमाएँ सत्य की सीमा को कष्ट नहीं सकती । सत्य औरसाधर के जस की भांति सदा निमल एवं मधुर होता है पाछे वह किसी भी पात्र में हो ओर जब भी कभी हो । वेध और पन्ध की सीमाओं को साँव कर व्यक्ति न भयज नहीं तो वस अनिम्यक होने वाले सत्य का इस प्रकार उद्घाटन करना भगवान्

श्रमपदव की निम्न मर्यादित का एक अद्भुत उदाहरण है। मैं अनुभव करता हूँ, यदि कोई ब्रह्म होता तो ऐसी स्थिति में कुछ ब्रह्म ही रहता या मौन रहता। परन्तु भगवान् श्रमपदेव, देव तथा, देवाधिदेव वं। जिनान पथभ्राट मरीचि के धूमिल वर्तमान को नहीं, विन्तु उन्मत्त भविष्य को निया ब्रह्म यह सत्य प्रमाणित किया कि पतित से पतित व्यक्ति भी धृष्ट नहीं है। क्या पता, वह कृष्ण और कत्र जीवन की ऊँची-मे-ऊँची पुनर्दिशा को तून लगे, आध्यात्मिक पवित्रता को पूर्णरूपेण आरम्भमान् करने लगे। क्या आज हम उक्त घटना पर मे अपने प्रतिपक्षी मेरे के लोगो के प्रति मन्भावना का भावार्थन नहीं ले सकते ?

भगवान् श्रमपदेव जीवन के हर क्षण पर उसी प्रकार दिव्य है, जिन प्रकार वैदूर्यरत्न। उनका जीवन आज की विषम परिस्थितियों में भी अपने निमल चरित्र की आभा बिखेर रहा है। सत्य की खोज में चल रहे हर यात्री के मन पर एक गहरी धाम डाल रहा है। उनका स्मरण होते ही समयाच्छन्न जन मानस में एक दिव्य एव सुन्दर प्रकाश फैल जाता है। उनके जीवन चरित्र मानव चरित्र के निर्माण के लिए हर युग में प्रेरणा स्रोत रह रहे और रहेंगे। यही कारण है कि महाकाल के प्रवाह में कोटि-कोटि दिन और रात बह गये, परन्तु उनके जीवनलेखन को परम्परा बह भी मर्यादा की धारा के समान प्रवहमान है।

मुझे हादिक हर्ष है कि भगवान् श्रमपदेव के जीवनचरित्र के मुक्ताहार में एक और सुन्दर मुक्ता पिरोया गया है। हमारे तक्षण साहित्यकार श्री दशरथ मुनि ने भगवान् श्रमपदेव के चरणकमलो में अपनी भावभरी श्रद्धा-अभिप्रेत की है, और इस रूप में भगवान् आदिनाथ का एक सुन्दर अनुशीलनात्मक जीवन चरित्र लिखा है।

श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा के प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया ॥ प्रमाणपुर स्तर जीवनचरित्र, चरित्रग्रन्थों के सदर्थ में नवीन दृष्टि प्रस्तुत करता है। देवेन्द्र जी ने बौद्धिक उन्मेष को नवीन आलोक पा रहा है, उसका स्पष्ट संकेत उनकी यह कृति है।

मैं मुभावा करता हूँ, भविष्य उनका साथ दे और वे अपने अध्ययन-अनुशीलन एवं विचार को और अधिक व्यापक बनाते हुए, भविष्य में और भी अधिक सुन्दर एवं विचार पूर्ण कृतियों से जैन साहित्य की श्रौतृद्धि कर यशस्वी हों।

जैन स्थानक

आमरा

१० अप्रेल, १९६७

—उपाध्याय अमर मुनि

अनुक्रम

● प्रथम खण्ड	१-५
श्री अष्टम पूर्वमव	
● द्वितीय खण्ड	५१-११
सुहृत्स्य जीवन	५१
साधक जीवन	६१
तीर्थङ्कर जीवन	१०१
● परिशिष्ट (१)	११५
" (२)	१२८
(३)	१७१
(४)	१७३

श्री ऋषभपूर्वभव : एक विश्लेषण



श्रमण संस्कृति

श्रमण संस्कृति आर्यावर्त की एक बिजिष्ट और गहान् संस्कृति है, जो अज्ञात काल में ही विष्व को आध्यात्मिक विचारों का पाथेय प्रदान करती रही है। ये विमल विचार कार्पनिक वायवीय न होकर जीवनप्रसूत हैं, अनुभवपरिचालित हैं। डॉक्टर एल पी टेसीटरी के शब्दों में—“इसके मुख्य तत्त्व विज्ञान-शास्त्र के आधार पर रचे हुए हैं, यह मेरा अनुमान ही नहीं बल्कि अनुभवमूलक पूर्ण दृढविश्वास है कि ज्यो-ज्यो पदार्थविज्ञान उन्नति करता जायेगा त्यो-त्यो जैसा धर्म के सिद्धान्त मध्य सिद्ध होते जायेंगे।”

एक फुलवाड़ी

श्रमण संस्कृति एक गद्गुत फुलवाड़ी है, जिसमें भक्तियोग की भव्यता, ज्ञानयोग का गौरव, कर्मयोग की कठिनता, अध्यात्म योग का आलोक, तत्त्वज्ञान की तानरर्पिता, दर्शन की दिव्यता, कला की कमनीयता, भाषा की प्राज्वलता, भावों की गम्भीरता और चरित्र-चित्रण के फूल गिर गये हैं, महक गये हैं, जो अपनी राहज गर्मानी सुखान में जन-जन के मन को सुख कर गये हैं।

आस्तिक्य

श्रमण-संस्कृति की विचारधारा का आधार आस्तिकता है। आत्मिक और नास्तिक शब्दों को सुधी विजो ने जिस प्रकार विभिन्न विधायो में सजोया है, पिरोया है, उसमें वह चिरचिन्त्य पहली बनगया है। प्रस्तुत पहली को संस्कृत व्याकरण के समर्थ आचार्य पाणिनि के

अस्तिनास्ति दिष्टमस्ति ^१ सूत्र के रहस्य का उन्घाटन करते हुए भट्टा जी दीक्षित ने बड़ी खूबी के साथ सुलझाया है। उन्होंने पूर्वाग्रह रहित सूत्र का निष्कप निर्भीकता के साथ प्रकाशित करते हुए कहा— जो निश्चित रूप से परलोक व पुनर्जन्म को स्वीकारता है वह आस्तिक है और जो उसे स्वीकारता नहीं वह नास्तिक है। ^२ अधिक स्पष्ट ढाँची में कहा जाए तो पुण्य पाप स्वर्ग नरक पुनर्जन्म और इस प्रकार आत्मा के नित्यत्व में निष्ठा रखना ही आस्तिक्य है। आस्तिक के अन्तर्मानस में ये विचार-सहस्र सदा तरंगित होती है कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, प्रकृत बोले का परित्याग कर कहाँ जाऊँगा और मेरी जीवन यात्रा का अन्तिम पड़ाव कहाँ होगा? ^३ वह आत्मा के अस्तित्व को स्वीकारता है और आत्मा की सत्स्थिति के स्थान लोक को भी स्वीकारता है लोक में इतस्ततः परिभ्रमण के कारण कम को भी स्वीकारता है और कर्मों से मुक्त होने के साधनरूप क्रिया को भी। ^४ अमर सस्कृति का यह दृष्टान्त है कि अनादि अनन्त काल से आत्मा विराट् विष्णु में परिभ्रमण कर रहा है। नरक तिर्गच्छ अनुध्य और वैवर्गति में इधर उधर घूम रहा है। गरवचर गीतम की जिज्ञासा का

१ अष्टाध्यायी अ० ४ पा० ४ सू० ६

२ अस्ति परलोक इत्येवमस्तिर्वच्यं स आस्तिक नास्तीतिमतिर्वच्यं स नास्तिक । —निदान्तनीमुषी (निर्णय सागर बम्बई) पृ० २७३

३ (क) अस्ति मे आत्मा उच्यते? नस्ति मे आत्मा उच्यते? ते अहं आमी? के वा इमो जुहूँ? इदं देवता न विस्मयते?

—आचार्य १।१।१। सू० ३

(ख) कस्मै कोऽहं कुत आयातः

वा मे जननी को मे तातः?

इति परिभाषा सर्वमसार

मय त्यक्त्वा स्वप्नविचारम् ॥

—चपटपत्रिका—आचार्य शंकर

४ से आप्तवादी लोगवादी कर्मावादी किरियावादी ।

—आचार्य यत १ अ १ उ १ सू० ५

समाधान करते हुए भगवान् श्री महावीर ने कहा—“ऐसा कोई भी म्थल नहीं, जहाँ यह आत्मा न जन्मा हो”, और ऐसा कोई भी जीव नहीं, जिसके माथ मातृ, पितृ, भ्रातृ, भगिनी, भार्या, पुत्र-पुत्री—रूप सम्बन्ध न रहा हो। गौतम को सम्बोधित कर भगवान् श्री महावीर ने कहा—हे गौतम ! तुम्हारा और हमारा सम्बन्ध भी आज का नहीं, चिरकाल पुराना है। चिरकाल से तू मेरे प्रति स्नेह सदभावना रखता रहा है। मेरे गुणों का उत्कीर्तन करता रहा है। मेरी सेवा भक्ति करता रहा है, मेरा अनुसरण करता रहा है। देव व मानव भव मे एक बार नहीं, अपितु अनेक बार हम साथ रहे हैं। स्पष्ट है कि माध्याग्न मासारिक आत्मा की तरह ही श्रमण सस्कृति के आराध्यदेव तीर्थङ्कर व बुद्ध भी, तीर्थङ्कर व बुद्ध बनने के पूर्व, नाना गतियों में भ्रमण करते रहे हैं। श्रमण सस्कृति ने ब्राह्मणसस्कृति की तरह उन्हें नित्यबुद्ध व नित्यमुक्त रूप ईश्वर नहीं कहा है और न उन्हें ईश्वर का अवतार या श्रण ही कहा है। उनका जीवन प्रारम्भ में कालीमाई की तरह काला था, उन्होंने साधना के साधुन से जीवन को भाँजकर किस प्रकार निखारा, इसका विशुद्ध विश्लेषण मागम व आगमेतर साहित्य में किया गया है।

५ जाव कि मन्वपाणा उववन्नपुब्बा ?

इता गोयमा । असत्ति अदुवा अणत्तसुत्तो ।

—भगवती सूत्र २, उ० ३

६ जावे सक्खीवाण माइत्ताए, पियत्ताए, भाइत्ताए, भगिणित्ताए, भज्जत्ताए, पुत्ताए, धूयत्ताए, सुण्हत्ताए उववन्नपुब्बे ?

इता गोयमा । असद् अदुवा अणत्तसुत्ता ।

—भगवती शतक १२, उद्दे० ७

७ ममणे भगव महाजोरे भगव गोयम बामतेत्ता एव वयासी—चिरसत्तुओऽसि मे गोयमा । चिरसणुओऽसि मे गोयमा । चिरपरिचिओऽसि मे गोयमा । चिरजुत्तिओऽसि मे गोयमा । विराणुगवओऽसि मे गोयमा । चिराणुवत्तीसि मे गोयमा । अणत्तर देवलोए अणत्तर माणुस्सए गवे कि पर ।

—भगवती शत० १४, उ० ७

सुनहरे चित्र

धर्मण सस्कृति दो प्रधान धाराओं में प्रवाहित है। एक जैन सस्कृति और दूसरी बौद्धसस्कृति। दोनों ही धाराओं में अपन-अपन आराध्यदेवों के पूज्यत्वों का कथन है। जातककथा में बुद्धघोष ने महात्मा बुद्ध के पाँच सौ सैतालीस भवों का निरूपण किया है।^१ उन्होंने बोधिसत्त्व के रूप में तपस्वी राजा वृक्ष देवता गज सिंह तुरङ्ग शृगाल कुशा बन्दर मछली सूअर भसा चाण्डाल आदि अनेक जन्म ग्रहण किये। बुद्धत्व प्राप्त करने के लिए उन्होंने कसा और किस प्रकार जीवन जीया यह उनके जीवनप्रसंगों के द्वारा बताया गया है। बुद्धत्व की उपलब्धि हेतु एक भव का प्रयत्न नहीं अपितु अनेक भवों का प्रयत्न अपेक्षित है। जैन सस्कृति के समर्थ आचार्यों ने भी तीर्थङ्करों के पूज्यत्वों के सुनहरे चित्र प्रस्तुत किये हैं। उन्हें ग्रन्थों के आधार से अगली पंक्तियों में भगवान् श्री ऋषभदेव के पूज्यत्वों का चित्रण किया जा रहा है।

किसी भी महान् पुरुष के वर्तमान का सही भूल्याकन करने के लिए उसकी पृष्ठभूमि को देखना अत्यन्त आवश्यक है। उससे हमें पता चलता है कि आज के महान् पुरुष की महत्ता कोई आकस्मिक घटना नहीं बरन जन्म-जन्मान्तरो में की गई उसकी साधना का ही परिणाम है। पूज्यत्वों का वर्णन उसके नम विकास का सूचक है। इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर जैन इतिहास के लेखकों ने भगवान् श्री ऋषभदेव के पूज्यत्वों का विवेचन किया है जिनसे प्रतीत होता है कि किस प्रकार क्रमशः उनकी आत्मा बसवसार होती गई और अन्त में उसका श्री ऋषभदेव के रूप में विकास सामने आया।

आवश्यकनियुक्ति आवश्यकवृत्ति आवश्यकमलयगिरिवृत्ति
त्रिपण्डितलाकापुरुषचरित्र और कल्पसूत्र की टीकाओं में श्री
ऋषभदेव के तेरह भवों का उल्लेख है^२ और दिगम्बराचार्य जिनसेन ने

१ बौद्ध धर्म क्या कहना है ?

—लेखक कृष्णदत्त मट्ट पृ २७

२ घण मिहुण-मुर महब्बल-जतिवग य बहरज्ज मिहुणे य

सोहम्म विज्ज-अ-चुय चक्की सज्जहु उससे य।

—आवश्यक मतय वृत्ति पृ १५७।२

महापुराण मे व आचार्य दामनन्दी ने पुराणसारसंग्रह^{१०} मे दस भवो का निरूपण किया है। अन्य दिगम्बर विज्ञो ने भी उन्ही का अनुकरण किया है। श्वेताम्बराचार्यो ने श्री धन्ना सार्थवाह के भव से भवो की परिगणना की है और दिगम्बराचार्यो ने महाबल के भव से उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त अनेक जीवनप्रसंगो मे भी अन्तर है।

यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इन भवो की जो परिगणना की गई है वह सम्यक्त्व उपलब्धि के पश्चात् की है।^{११} श्री ऋषभदेव के जीव को अनादि काल के मिथ्यात्व रूपी निबिड अन्धकार मे से सर्वप्रथम धन्ना (धन) सार्थवाह के भव मे मुक्ति मिली थी और सम्यग्दर्शन के अमित आलोक के दर्शन हुए थे।

[१ धन्ना सार्थवाह

भगवान् श्री ऋषभदेव का जीव एक बार अपर महाविदेह क्षेत्र के क्षितिप्रतिष्ठ नगर मे धन्ना सार्थवाह वनता है।^{१२} उसके पास विपुल

१० आद्यो महाबलो ज्ञेयो ललिताङ्गस्ततोऽपर ।

वज्रजङ्गस्तथाऽऽर्यश्च श्रीधर सुविधिस्तथा ॥

भङ्ग्यतो वज्रनाभोऽह्निन्द्रश्च धृषभस्तथा ।

दशैतानि पुराणानि पुक्तेनाऽऽभितानि वै ॥

—पुराणसार संग्रह सर्ग० ५, श्लो० ५-६ पृ० ७४

११ सम्प्रति यथा भगवता सम्यक्त्वमवाप्त यावतो वा भवानवाप्तसम्यक्त्व ससार पर्यटितवान् ।

—आवश्यक मल० वृत्ति १५७।२

१२ तेण कसेण तेण समएण अवरविदेहवासि वणो नाम सत्थवाहो होत्था ।

—आवश्यक हारिमद्वीया वृत्ति, पृ० ११५

(क्ष) आवश्यक मल० वृत्ति, पृ० १५८।१

(ग) आवश्यक श्रुति पृ० १३१

(घ) एवं वाऽऽसीत् सार्थवाहो, धनो नाम यक्षोवन ।

वात्पद सम्प्रदानेक, सरितामिव सागर ॥

—त्रिपष्टि० १।१।३६। पृ० २

बनव था सुदूर विदेशों में वह व्यापार भी करता था। एक बार उसने यह उद्घोषणा करवाई कि जिसे वसन्तपुर व्यापाराय चलना है वह मेरे साथ सह्य चले। मैं सभी प्रकार की उसे सुविधाएँ दूँगा।^१ अनाधिक व्यक्ति व्यापाराय उसके साथ प्रस्थित हुए।^{१६}

धमधाय नामक एक जन आचार्य भी अपने शिष्यसमुदाय सहित वसन्तपुर धम प्रचाराय जाना चाहते थे। पर पक्ष विकट सकटमय होने से बिना साथ के जाना सम्भव नहीं था। आचार्य ने जब उद्घोषणा सुनी तो थप्टी के पास गया और थप्टी के साथ चलन की भावना अभिव्यक्त की। थप्टी ने अपने भाग्य की मराहना करते हुए

१३ (क) लो कितिपट्टिवातो नवरातो वानिग्गण वसन्तपुर पट्टिता
वातण करेइ जहा—ओ मए सद्धि जाइ तस्साहुमुत्त बहामि
त जहा—आशेख वा पाशेख वा वत्थेण वा पत्तण वा
ओत्तहेण वा भेसजेण वा अण्णए वा आ जेण विणा
विसुरइ तेख ति।

आवश्यक मत्त० वृ पत्र १५८।१

(ख) आवश्यक हारिजरीया वृत्ति पत्र ११५

(ग) साववाहा वनस्तस्मिन् सकलऽपि पुरे तत् ।
विभिन्न ताडमित्थोष्ण पुष्पानित्थोपयत्त ॥
असी धन साववाहो वसन्तपुरमेव्यति ।
य केऽयं विवातन्ति ते वसन्तु सहाऽमुना ॥
भाण्ड दास्यत्यभाण्डावाऽवाहनाय च वाहनम् ।
सहाय चाऽसहायायाऽसम्भवाय च सम्भसम् ॥
दस्युग्यस्नास्यते मार्गे स्वपदीपद्रवादपि ।
पानपिप्यत्वसौ मन्दान् सहवान् चाधनानिव ॥

—निपट्टि० १।१।४५-४८ वृ ३।१

१४ त च सोऽथ बह्व उचितकम्पविमत्तो यवहुः ।

—आवश्यक मत्त वृ प १५८

१५ आवश्यक पूर्णि पृ १३१

(ख) आवश्यक हारिजरीया वृत्ति पत्र ११५

अनुचरो को श्रमणों के लिए भोजनादि की सुविधा का पूर्ण ध्यान रखने का आदेश दिया।^{१६} आचार्य श्री ने श्रमणाचार का विस्लेषण करते हुए बताया कि श्रमण के लिए औद्देशिक, नैमित्तिक, आदि सभी प्रकार का दूषित आहार निषिद्ध है। उसी समय एक अनुचर आम का टोकरा लेकर आया, श्रेष्ठी ने आम ग्रहण करने के लिए विनीत विनती की। पर, आचार्य श्री ने बताया कि श्रमण के लिए सचित्त पदार्थ भी अप्राप्त है। श्रमण के कठोर नियमों को सुनकर श्रेष्ठी अवाक् था।^{१७}

आचार्य श्री भी सार्थ के साथ पक्ष को गार करते हुए वृत्ते जा रहे थे। वर्षा ऋतु आई। आकाश में उमड़-धुमड़ कर बनबोर घटाएँ छाने लगीं एवं गम्भीर गर्जना करती हुई हज़ार-हज़ार घाराओं के रूप में बरसने लगी। उस समय सार्थ भयानक अटवी में से गुजर रहा था। मार्ग क्रीचड़ से व्याप्त था। सार्थ उसी अटवी में वर्षावास व्यतीत करने हेतु चला गया।^{१८} आचार्य श्री भी निर्दोष स्थान में स्थित हो गये।^{१९}

(ग) नवर इह तेज सम यच्छो सङ्गस सम्पद्विदो ।

—आवश्यक मल० पृ० पु० १५८।१

(घ) भवन्तरे धर्मघोष वाचार्थ साधुचर्या ।

वर्षेण पावयन् पृथ्वी सार्यवाहमुपाकरो ॥

—त्रिपठि १।१।५१।३।१

१६ धनेन पृष्टास्त्वाचार्या समागमनकारणम् ।

पक्षन्तपुरमेधामसु त्वत्सार्येनेत्यचीकचन् ॥

सार्यवाहोऽप्युवाचैव धन्योऽयं भगवन्महम् ।

मनिगम्या यद्यथाहि भत्सार्येन च यास्यस्य ॥

—त्रिपठि १।१।५३-५४।१।१

१७. त्रिपठि १।१।५५ ॥ ६१ पृ० पु० ३।२

१८ (क) घनसत्यवाह पोषण,

अद्विगमसु भवति वासवस्य च ।

—आवश्यक नियुक्ति, या० १६८

(ख) आवश्यक पूर्णि, जिन० पृ० १३१

(ग) आवश्यक हारिमद्वीयावृत्ति य० ११५

उस अटवी में साथ को अपनी कल्पना से अधिक रुकना पड़ा अतः साथ की लाघ्न मामग्री ममाप्त हो गई। सुधा से पीड़ित साथ अरण्य में कन्द मूलादि की अन्वेषणा कर जीवन व्यतीत करने लगा।^१

वपावास के उपसंहार काल में घक्षा साथवाह को अकस्मात् स्मृति आई कि मेरे साथ जो आचार्य आये थे उनकी आज तक मैंने सुध नहीं ली। उनके आहार की क्या व्यवस्था है इसकी मैंने जाँच नहीं की। कन्दमूलादि सचित्त पदार्थों का वे उपभोग नहीं करते। वह शीघ्र ही आचार्य के पास गया और आहार के लिए अभ्यर्थना की।^२

- (घ) सो व सत्त्वा जाहे अडविमरुक्त सम्पत्तो ताहे वासारत्तो जातो ताहे सो सत्त्वबाहो अतिगुणवा पच सि काळण तत्त्वैव सत्त्वमिषस काठ वासावास दितो तम्भि छिए सत्त्वो सत्त्वो ठिगो ।

—आवश्यक निमुक्ति मस० पृ० १५८।१

- (ङ) निपटि १।१।१ ।

१६ निपटि १।१।१ २ ।

- २ (क) जाहे व तैसि अभसत्त्वै-समाख निद्रिय भायख ताहे कन्दमूलादि समुद्दिशन्ति ।

—आवश्यक पूर्णि पृ० ११५

- (ख) जाहे व तैसि सत्त्वद्वियाख भोयख निद्रिय ताहे ते कन्दमूलफलाणि समुद्दिशितमारब्हा ।

—आवश्यक निमुक्ति मस० पृ० १५८।१

- (ग) मूत्रत्वात् साधनोक्तस्य दीर्घत्वात् प्राचयोऽपि च ।
अमृतमार्गं च न मर्केषा पात्रेयवशादिकम् ॥
उत्तमैतस्तत्त्वैस्तु कुचेसास्ताप्या इव ।
सादितु कन्दमूलादि सपार्ता चार्थवान्ति ॥

—निपटि १।१।१ ३-१ ४

- (घ) आवश्यक हारिमरीयावृत्ति ११५

२१ आवश्यकनिमुक्ति भा० १६८ ।

- (ङ) आवश्यकपूर्णि पृ० १२ ।

आचार्य श्री ने श्रेष्ठी को कल्प्य और अकल्प्य का परिज्ञान कराया । श्रेष्ठी ने भी कल्प्य अकल्प्य का परिज्ञान कर उत्कृष्ट भावना में प्रासुक विपुल धृत दान दिया ।^{२२} फलस्वरूप सम्पत्त्व की उपलब्धि हुई ।^{२३}

- (ग) एक काले बच्चति योवावसेमे वासारसे वषस्म चिन्ता जाता—
को एत्थ सत्थे दुस्सिस्तोत्ति ? ताहे सरिय जहा मए सम माहुणो
आगया तेसि कदाई न कप्पत्ति, ते दुस्सियया महातवस्सिणो,
तो तेसि कल्ल वेमि, ततो पभाए ते निम्मितिया ।

—आवश्यक मत० वृ० प० १५८।१

- (घ) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११५ ।

२२ बहु बोलीरो वासे चिन्ता घयदाणभासि तया ।

—आवश्यक नियुक्ति गा० १६८

- (ख) आवश्यकचूर्णि पृ० १३२ ।

- (ग) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति ११५ ।

- (घ) ते भणन्ति—अ अम्ह कप्पिय होज्जा त गेहेज्जामो । तेण
पुच्छिय मयव । कि पुण तुम्भ कप्पइ ? साहूहि भणिय—अ
अम्ह निमित्तमकयमकारियमसकप्पियमहापवत्तातो पाकातो
भिक्षामित्त ततो तेण साहूण फासुय विज्जल घयदाण
दिन्न ।

—आवश्यक मत० वृ० प० १५८।१

- (ङ) धन्योऽहं कुलकुल्योऽहं, पुण्योऽहमिति चिन्तयन् ।
रोमाञ्चितवपु सपि साधवे स स्वयं ददौ ॥
आनन्दाश्रुजलै पुष्पकम्ब कन्दलपत्रिव ।
धृतवानावसानेऽथ धनोऽबन्दत तो मुनी ॥
सर्वकल्याणसिद्धौ सिद्धमन्त्रसम तत ।
वितीर्य धर्मलाग तो जग्मतुर्निजमाश्रयम् ॥

—त्रिपष्टि० १।१।१४०—१४२ प० ६

२३ तदानी सार्धवाहेन दानस्याऽस्य प्रभावत ।

तेने मोक्षतरोर्वीज बोविवीज सुदुर्लभम् ॥

—त्रिपष्टि १।१।१४३।प० ६

[२] उत्तरकुरु में मनुष्य

वहाँ से घना सायबाह का जीव आयु पूरा कर दान वं दि
म उत्तरकुरुभ्य मे मनुष्य हुआ ।

[३] सौधम देवताक

वहाँ से भी आयुपूरा हान पर घना सायबाह का जीव १
म नेव रूप मे उत्पन्न हुआ ।

२४ सो ब्रह्मदेव पालिता तेन दानफलम उत्तरकुरुमणुतो
—आवश्यक पूर्णि

(क) तेन दानफलम उत्तरकुराप मणुसो जातो ।

—आवश्यक हारिभद्रीभावति

(ग) सा न ब्रह्मदेव पालिता कालमात्रे काल किंचा तेन
उत्तरकुराप मणुसा जातो ।

—आवश्यक मल वृत्ति

(घ) कालम तत्र पूर्णाय कालमममुपाकृत ।

मास्वितकालमपमेपुत्तरेषु कुरुष्वसी ॥

सीतानम सरतटे बभूवृक्षामुपवत् ।

उत्पेदे मुग्धमर्मेण मुनिदानप्रभावत् ॥

—त्रिपठि १।१।२२६-१

२५ (क) ततो वाउवक्षएव उम्बट्टिऊर्ण सोहम्मैकण्ये तिपत्तिमो
देवो जावो ।

—आवश्यक पूर्णि

(ग) ततो वाउवक्षए सोहम्मै कण्ये देवो उववभो ।

—आवश्यक हारिभद्रीवावृत्ति ५

(घ) आवश्यक मल घृ ५ १३८-११

(च) मिथुनायु पासयित्वा धनजीवरत्तस्त्वं स ।

प्राग्भ्रमदानफलत सौधमे निवसोभवत् ॥

—त्रिपठि

[४] महाबल^{२६}

वहाँ से च्यवकर वृत्ता मार्यवाह का जीव पञ्चिम महाविदेह के गधिलावती विजय मे वैताक्य पर्वत की विद्याधर श्रृंगी के अधिपति शतबल राजा का पुत्र महाबल हुआ ।^{२७}

प्राचार्य जिनमे^{२८} व प्राचार्य दामनन्दी^{२९} ने उसे श्रतिबल का

२६ आवश्यक पूजि मे आचार्य जिनदान गणि महत्तर ने महाबल, ललिताङ्ग, वज्रजङ्घ, युगल, मुष्मदेवसोक इन—यांच भवो का वर्णन नहीं किया है । —लेखक

२७ तत्तौजि चविज्जग इहेव जम्बुद्वीवे अवरविदेहे गधिलावद्विजये वेयद्विपञ्चरा गन्धार्जयवण गन्धमिद्धे विज्जहात्तर नगरे मयदरगच्छो पुत्तो महाबलो नाम गया पातो ।

—आवध्वरु मण० सू० प० १५८।२

(ए) आवध्वरु हाग्निमग्नीया सू० प० १।८

(ग) ज्जुत्वा मीधर्मकरपाच्च, विवेहेप्पपरेप्पव ।
विजये गन्धिनावत्या वैताक्यपुबिबीधरे ॥
गाम्धागन्धे अनपदे, पुरे गन्धसमृद्धके ।
गज शतवसागन्धस्य विद्याधरधिरोमणे ॥
भार्याया चन्द्रकान्ताया पुनत्वेनोदपादि म ।
नाम्ना महाबल इति, वसेनाश्रितमहाबल ॥

—त्रिपटि १।१।२३६-२४१ प० १०।१

(घ) उत्तरगुरु मोहमे महाविदेहे महम्मनो राया ।

—आव० मि० म० सू० १५६।१

२८ तस्या पतिरमूल्येन्द्रमुकुटावृद्धसामन ।

सनेन्द्रोऽतिवसो नाम्ना प्रतिपद्यत्तस्य ॥१२२॥

मनोहगङ्गी तस्यामून् प्रिया नाम्ना मनोहरा ॥१३१॥

तयोर्महाबलख्यातिरमूत्सूनुर्यहोदय ॥१३३॥

—महापुराण पर्व ४। स्तो० १२२, १३१, १३३ पृ० ८२-८३

२९ अलकाया मनोहम्यास्तिनयोऽतिबलस्य च ।

महाबल इतिख्यात मेन्द्रोऽमूद् दक्षमे भवे ॥

—पुराणसार समूह ५।१।१

[२] उत्तरकुरु में मनुष्य

वहाँ से घना मायवाह का जीव मायु पूरा कर दान क दिव्य प्रभाव
म उत्तरकुरुक्षेत्र में मनुष्य हुआ । ५

[३] सौधम देवताक

वहाँ से भी मायुपूरा होने पर घना सायवाह का जीव सौधम कल्प
म देव रूप में उत्पन्न हुआ ।

२४ सो अहाउय पालिता तेज दानफलज उत्तरकुरुमणुतो जाता ।

—आवश्यक पूर्णि प ११२

(क) तेज दानफलज उत्तरकुरुए मणुतो जातो ।

—आवश्यक हारिमद्वीयावृत्ति पृ ११६

(ग) सा न अहाउय पालिता काममासे काम किञ्चा तेज दानफलज
उत्तरकुरुए मणुतो जातो ।

—आवश्यक मल वृत्ति प १५५।१

(घ) कामज तज पुनष्टि कामधर्ममुपायत ।

आस्थितकाम्तमुपमेपुत्तरेषु कुरुष्वसौ ॥

सीतानम सख्यते जम्बूद्वीपापुत्रवत ।

उत्पेदे युग्मधमज मुनिदानप्रभावत ॥

—त्रिपिठि १।१।२२६-२२७ प ६

२५ (क) ततो आउवक्षए जम्बद्विऊण सोहृम्येकपे तिमिजोवमद्वितीभी
देवो जायो ।

—आवश्यक पूर्णि पृ १३२

(ख) ततो आउवक्षए सोहृम्ये कप्य देवो जववतो ।

—आवश्यक हारिमद्वीयावृत्ति प ११६।१

(ग) आवश्यक मल वृ प १३८।१

(घ) मिथुनायु पालयित्वा वनद्वीपस्ततश्च स ।

प्राग्मदानफलत सोधर्म विदसोमवत ॥

—त्रिपिठि १।१।२३८

[४] महाबल^{११}

वहाँ से च्यवनकर वना मायवाह का जीव पश्विम महाविदेह के गङ्गिलावती विजय मे वृत्ताक्ष पर्वत की विद्यावर्धनी के अधिपति प्रतपराज राजा का पुत्र महाबल हुआ ।~

ग्राचार्य जिनमे^{२०} व ग्राचार्य रामनन्दी^{२१} ने इसे शक्तिवल का

- २६ आपसक खूबि मे आचार्ये जिनदाम गनि महत्ता मे महाबल, ललितान्तर,
वज्रजह्नु, गुणल, गुधमदेवसोक इन—पाँच भयो का बखान नही
किया है : —देवग

- २७ सत्तोप्रिय पयिक्कसु इहव जप्पुहीरे नवरविदेहे गन्वितावद्विशण
येयद्दुपक्षया अन्दागच्छाउअ मग्गममिद्धे रिज्जाहाए नवरे' ' '
मयममग्गाओ पुत्तो भक्कायलो नाम गया जातो ।

—आवश्यक फल० सु० प० १५८।२

- (मू) आगव्यक्त हाभिभदीया वृ० प० १८६

- (ग) श्रुत्या नौधर्मगन्पाक्षे, विद्वद्गणैश्च ।
 त्रिष्वे नमिस्तान्त्वा तैस्तान्त्वापिबिधये ॥
 मान्वागन्त्ये जन्मदे, पुरे न्यस्यमृच्छके ।
 शश्रु यत्तस्मात्तस्म त्रिधाधर्मादिभेदे ॥
 भार्याया नम्रश्रुताया पुष्करेनौवपादि न ।
 नाम्ना मन्त्रावस इति, मनेन इति महात्मन ॥

—विमर्ष १११०३६-२४१ १० १०११

- (घ) उत्तम्युक्त मोक्षमये महाविदेहे महाम्यनो गमा ।

—आय० नि० म० य० १५६।१

- २८ शल्या पतिर्भूतैर्नद्रमृकुटाह्वयगतः ।

सगोन्द्रोऽतिवली नाम्ना प्रतिपद्यवसथाय ॥१२२॥

मनोद्वन्द्वी तस्यापून् त्रिषा नाम्ना मनोद्वरा ॥१३१॥

तत्रोर्महावत्तस्यातिरुन्नुत्तुर्मन्नीदय ॥१३३॥

—महापुराण पर्व ४। श्लो० १२२, १३१, १३३ पु० ५२-५३

- २६ बलकाया मनोहृष्यारितनयौष्ठियतस्य च ।

महाबल इति श्रुत्वा मेन्नोऽप्युद दशमे भवे ।

—पूरणसार सप्तद ५।१।१

पुत्र लिखा है। और आचार्य मलयगिरि^{१०} व आचार्य हेमचन्द्र^{११} ने प्रतिबल का पौत्र लिखा है।

महाबल के पिता को एक बार ससार से विरक्ति हुई^{१२} पुत्र को राज्य दे वह स्वयं थमरा बन गये।

एक बार सम्राट् महाबल अपने प्रमुख प्रमात्यो^{१३} के साथ राज्य

१ महाबलरत्नो जप्ता ।

—आचक्ष्वणिमुक्ति मल वृ १५८

११ विपठितस्ता १।१२५

१२ अथान्येद्य रत्नी राजा निर्बद्ध विपयेष्वगात् ।

विमृष्ट कामयोगेषु प्रपञ्चयाथ कुतोद्यम ॥

—महापुराण विन ४।१४।१८४

(क) विपठि १।१।२५ के २६५ ।

१३ पुत्र राज्ये निषण्ण स्वयं क्षतमस्तिष्ठत् ।

आद्ये समसांभ्राज्यमाचार्यचरणातिके ॥

—विपठि १।१।५७४

(ख) इति निषिक्त्य धीरोऽसावभिप्रेक्षपुरस्सरम् ।

मूनम् राज्यतमस्वर्गशितातिवसस्तथा ॥

ततो नम इमापेक्षमन्वगो नि सृतो ब्रुहात् ।

बहुभि क्षेत्रे तार्द्धं दीक्षा स समुपाददे ॥

—महापुराण विन ४।१५।१।१५२ वृ ८५

१४ ते स्वयम्भुटं सम्मिश्रयति क्षतमस्तिष्ठत् ।

स्वयम्भुटश्च तत्रासाञ्चक्रिरे भग्निलोऽपि हि ॥

—विपठि १।१।२८७।११

(क) महामतिश्च सम्मिश्रयति क्षतमस्तिष्ठत् ।

स्वयम्भुटश्च राज्यस्य मुक्तस्तम्भा इव स्थिरा ॥

—महापुराण ४।१६।१।८५

सभा में बैठे हुए मनोविनोद कर रहे थे।^{३४} उनके प्रमुख चार अमात्यो में से स्वयम्बुद्ध अमात्य सम्मगृहपटि था, समिन्नमति, शतमति, और महामति ये मिथ्याहृष्टि थे।

स्वयम्बुद्ध ने देखा—सम्राट् भौतिक वैभव की चकाचौध में जीवन के लक्ष्य को विस्मृत कर चुके हैं। उसने सम्राट् को सम्बोध देने हेतु धर्म के रहस्य पर प्रकाश डालते हुए कहा—दया धर्म का मूल है। प्राणों की अनुकम्पा ही दया है। दया की रक्षा के लिए ही शेष गुणों का-उत्कीर्तन किया गया है। दान, जीस, तप, भावना, योग, वैराग्य उस धर्म के लिंग हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मधर्म और अपरिग्रह ही सनातन धर्म हैं।^{३५}

अन्य अमात्यो ने परिहास करते हुए कहा—मज्जिवर ! जब भ्रातृ ही नहीं है तब धर्म-कर्म का प्रश्न ही नहीं रहता। जिस प्रकार मनुष्य गुह, जल, आदि पदार्थों को मिला देने से उनमें भावक शक्ति उत्पन्न होती है, उसी प्रकार पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि के संयोग से अन्न

३४ कदाचिवम तस्माऽऽसीद्वर्षवृद्धिर्विनोत्सव ।

मङ्गलैर्गीतवादिप्रनृत्यारम्भैश्च समृद्ध ॥

मिहानले सभामीन तदानी खचरामिषम् ।

—महापुराण० जिन० प० ५, स्त

स्वयम्बुद्धोऽभवत्तेषु सम्मग्नमन्त्रबुद्धधी ।

जेपा मिथ्याहृष्टोऽमी सर्वे स्वामिहितोद्यता ॥ ४५

—

(स) पुराणमार श्लो० ७, सर्ग ११११ ।

४३ कायात् — भवेद्भर्मो दयाप्रवर्त्यक ।

मियो विहृष्टधर्मत्वात्तयोस्त्रिदविदात्मनो ॥

—महापुराण पर्व ५,

उत्पन्न हो जानी है।^१ एतद्वत् ही लोक में पृथ्वी आदि तत्त्वों से बने हुए हमारे शरीर से पृथक् रहने वाला चेतना नामक कोई पदार्थ नहीं है। क्योंकि शरीर से पृथक् उसकी उपलब्धि नहीं होती। ससार में जो पदार्थ प्रत्यक्ष रूप में पृथक् मिळ नहीं होते उनका अस्तित्व भी आकाशकुसुमवत् माना जाता है।^२ वर्तमान में सुखों को त्याग कर भविष्य के सुखों की कल्पना करना भावी छोड़ एक को घाव ऐसा पूजा आहुति पाव की मौकिक कहावत परिसर्य करना है।

नास्तिक मत का निरसन करते हुए स्वयम्बुद्ध भगवान् ने कहा—
 पदार्थों को जानने का साधन केवल इन्द्रिय और मन का प्रत्यक्ष ही है अपितु अनुभव प्रत्यक्ष योगि प्रत्यक्ष अनुमान और आगम भी हैं।
 इन्द्रिय और मन की शक्ति अत्यन्त सीमित है। इनसे तो चार पाँचों के पूज्य भी नहीं जाने जा सकते तो क्या उनका अस्तित्व भी न चाय? इन्द्रियों केवल शब्द रूप रस गंध और स्पर्शात्मक भूत पुमान्ती है और मन उन्हीं पदार्थों का चिन्तन करता है। यदि आद्यपदार्थों को जानना भी है तो आगम दृष्टि से ही। स्पष्ट है सभी पदार्थ सिर्फ इन्द्रिय और मन से नहीं जाने जा
 (क) शब्द रूप रस गंध और स्पर्श नहीं है।^३ वह अकपी मूनी तत्त्व इन्द्रियों से नहीं जाने जा सकते।

ततो—

बहुभिर्यस्य समुद्भवति चेतना ।

त्रिभ्यो मदवतिरिव ध्वजम् ॥

—निर्वाण ११११३३१

१४ ते स्वयम्बुद्ध सम्भिन्ना

स्वयम्बुद्धश्च तत्रावाप्स्यति चेतना ।

अगम्यव्यतिष्ठत ॥

वापुसाय पर्य ५ ॥

(क) महामतिश्च सम्भिन्नमतिः अत्यतिष्ठतः ।

स्वयम्बुद्धश्च राजस्य मूलस्थम्बा इव स्थिरा ॥

—महापुरुष ४११२१५५

आत्म-सिद्धि के प्रबल प्रमाण प्रस्तुत करते हुए उसने कहा—
स्वसंवेदन में भी आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है। मैं सुखी हूँ, मैं
दुःखी हूँ—यह अनुभूति शरीर को नहीं होती, अतएव इस अनुभूति का
कर्ता शरीर में भिन्न ही होना चाहिए।^{४१} सभी को यह विश्वास
होता है कि मैं हूँ, पर किसी को भी यह अनुभव नहीं होता कि मैं
नहीं हूँ।^{४२}

प्रत्येक इन्द्रिय को अपने विषय का ही परिज्ञान होता है, अन्य
इन्द्रिय के विषय का नहीं। यदि आत्म-तत्त्व को न माना जाय तो
गभीर इन्द्रियों के विषयों का जोड़ रूप [सकलनात्मक] ज्ञान नहीं हो
सकता, किन्तु पाण्डु स्नाते समय स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द—इन
पाँचों का सकलित ज्ञान स्पष्ट होता है। एतदर्थ इन्द्रियों के विषयों का
सकलनात्मक परिज्ञान करने वाले को इन्द्रियों में पृथक् मानना होगा
और वही आत्मा है।

आत्मा और शरीर एक नहीं है। जो चैतन्य है, वह शरीर रूप नहीं
है और जो शरीर है, वह चैतन्य रूप नहीं है, क्योंकि दोनों एक दूसरे से
स्वभावतः विसदृश हैं। चैतन्य चित्स्वरूप है—ज्ञान दर्शन रूप है और
शरीर अचित्स्वरूप है—जड़ है।^{४३} आत्मा और शरीर का सम्बन्ध

४१ स्वसंवेदनमेषोऽयमात्माऽस्ति सुप्तदुःखविदुः ।

निषेधितु आभाभावाच्छक्यते न हि केनचित् ॥

सुप्तितोऽहं दुःखितोऽहमिति कस्याऽपि ज्ञातुचित् ।

जायते प्रत्ययो नैव विनाऽऽज्ञानमवस्थितिः ॥

—त्रिपिठिकं १।१।३४७-३४८ । पृ० १३

४२ सर्वोऽस्मात्माऽस्तित्वं प्रत्येति, न नाहमस्मीति ।

—ब्रह्मभाष्य १।१।१ । आचार्य शंकर

४३ कायात्मकं न चैतन्यं, न कायश्चेतनात्मकम् ।

मिथो विरुद्धमन्तत्वात्तयोश्चिदाविदात्मनो ॥

—महापुराण पर्व ५, श्लोक ५१ पृ० ६६

इस प्रकार स्वयंबुद्ध के अकाट्य तर्कों से नास्तिकवादी अमान्य परास्त हो गये। सभी ने आत्मा के पृथक् अस्तित्व को स्वीकार किया और महाबल राजा भी अत्यन्त आह्लादित हुआ।^{५८}

स्वयंबुद्ध अमान्य ने अन्य अनेक उपनयों के^{५९} द्वारा सम्राट् को यह बताया कि शुभ और अशुभ कृत्यों का फल भी यमय शुभ और अशुभ ही होता है।^{६०}

वार्ता का उपसंहार करते हुए उसने कहा— राजन्! आज प्रातः मे नन्दन वन में परिभ्रमणार्थ गया था, वहाँ दो विदिष्ट लम्बिघागी मुनिवर पधारे। मैंने उनसे आपकी प्रवण्ये प्रायु के सम्यग्य में जिज्ञासा प्रस्तुत की तो उन्होंने बताया कि वह एक माह की ही श्रेण है।^{६१}

५८ इति तद्वचनाज्ज्ञाता परिपत्नकल्लेन सा।

निरारेकारमसद्भावे सम्प्रीतश्च समापति ॥

—महापुराण ४।८६।१०१

(ख) त्रिपटि १।१

५९ त्रिपटि १।१।४००।४४७

(क) महापुराण पर्व ४। श्लोक ८६ में ७१७, पृ० १०१-११७

६० सुचिण्या कम्मा सुचिण्णफला भवन्ति।

सुचिण्या कम्मा सुचिण्णफला भवन्ति ॥

—जीपपातिङ्ग सूत्र

६१ ताम्या तु भवतो माममात्रमायुनिवेक्षितम्।

अतस्त्वा त्वरवाम्बध, धर्मायैव महाभते।

—त्रिपटि १।१।४४६

(क) भाष्यभाष्यविष्टम्भ जीवित तस्य निश्चितम्।

सदस्य श्रेयसे भद्र। घटवास्त्वमधीतम् ॥

—महापुराण ४।२२१।११३

(ग) भाष्यवत्तेषां

—आव० नि० मत० वृ० पृ० १२८

(घ) वाचस्पत्ये हरिमन्त्रिवावृत्ति प० ११६

वस्तुतः तलवार और म्यान की तरह है। आत्मा तलवार है और शरीर म्यान है।^{४४}

सूतचतुष्टय स आत्मा की उत्पत्ति होना समझ नहीं है। क्योंकि जो जड़ है उसमें चेतन की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? वस्तुतः कार्यकारणभाव और गुणगुणभाव सजातीय पदार्थों में ही होता है विज्ञानीयों में नहीं। पुण्य गुड और जल के संयोग से मादक शक्ति उत्पन्न होने का उदाहरण देना भी अनुपयुक्त है। क्योंकि गुड आदि भी जड़ है और उनसे समुपन्न मादक शक्ति भी जड़ है। यह तो सजातीय द्रव्य से ही सजातीय द्रव्य की उत्पत्ति हुई, न कि विज्ञानीय द्रव्य की।^{४५} यदि आप शरीर के साथ ही आत्मा की उत्पत्ति मानते हैं तो जन्मते ही शिशु में दुग्धपान की इच्छा और प्रवृत्ति कैसे होती है?^{४६} अतः यह स्पष्ट है कि आत्मा है वह नित्य है फलतः पूर्वभाव के संस्कारों से ही ऐसा होता है।

४४ कायचित्तस्योर्म्यस्य विरोधिभुक्प्रयोगतः ।

तयारन्तर्बहिरूपमिर्माणाभिमिकोऽवतः ॥

—महापुराण ५।५९।६९

४५ न सूतकार्यं चतस्रः पटने तदनुभाऽपि वा ।

ततो जात्यन्तरीमावात्ताहमग्नेन तद्वत्त्वात् ॥

—महापुराण ५।५९।६९

४६ एतन्न च तिसिप्त मदिराजनिदधनम् ।

मदिराजं च विरोधिन्या मदसकरो विभावनात् ॥

—महापुराण ५।६५।६५

(क) किञ्च पिष्टोदकादिभ्यो मदसक्तिरपेक्षता ।

अपेक्षनेभ्यो जातेति दृष्टान्तश्चेतने कथम् ? ॥

—विषयि १।१।३६१ पृ १४।१

४७ विना हि पूर्ववत्तन्वागुत्पत्तिं जातमावकः ।

अधिलिख कथं बालो भुजमर्पयति स्तने ? ॥

—विषयि १।१।३५३

(क) कायन्ती देहिनी देही न विना जनतस्तनू ।

पूर्वोत्तरे सविदभिष्मनस्त्वान्यध्यानेहवत् ॥

—महापुराण ५।६५।६५

इस प्रकार स्वयंबुद्ध के अकाट्य तर्कों से नास्तिकवादी अमात्य परास्त हो गये । सभी ने आत्मा के पृथक् अस्तित्व को स्वीकार किया और महाबल राजा भी अत्यन्त आह्लादित हुआ ।^{४८}

स्वयंबुद्ध अमात्य ने अन्य अनेक उपनयो के^{४९} द्वारा सम्राट् को यह बताया कि शुभ और अशुभ कृत्यों का फल भी क्रमशः शुभ और अशुभ ही होता है ।^{५०}

वार्ता का उपसंहार करते हुए उसने कहा—राजन् ! प्रातः प्रातः मैं नन्दन वन में परिभ्रमणार्थ गया था, वहाँ दो विजिष्ट लब्धिवधारी मुनिवर पधारे । मैंने उनसे आपकी अवशेष आयु के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रस्तुत की तो उन्होंने बताया कि वह एक माह की ही शेष है ।^{५१}

४८ इति तद्वचनाज्जाता परिपत्सकलीव सा ।

निरारेकारमसद्भावे सम्प्रीतस्य समापत्ति ॥

—महापुराण ५।८६।१०१

(१) विषयि १।१

४९ विषयि १।१।४००।४४२

(२) महापुराण पर्व ५ । श्लोक ८६ से २१२, पृ० १०१-११२

५० सुविष्णा कम्मा सुविष्णफला हवन्ति ।

दुविष्णा कम्मा दुविष्णफला हवन्ति ॥

—जीवपासिक सूत्र

५१ ताम्पा तु भयतो माममात्रमायुर्निवेदितम् ।

अतस्त्वा त्वरयाम्यस्य, धर्मायैव महामते ।

—विषयि १।१।४४६

(३) मासमात्रावशिष्टञ्च जीवित तस्य निष्पिबु ।

तदस्य शेषे भद्र । घटेवास्त्वमसीतक ॥

—महापुराण ५।२२१।११३

(४) मासावसेयाक

—भाव० नि० मल० वृ० पृ० १५८

(५) भावस्कक हरिमन्त्रीवाक्ये पृ० ११६

सम्राट् महाबल अमात्य के मुह से मुनि की मविध्यवाणी सुनकर सकपका गया। मृत्यु के भयानक आतङ्क से वह विह्वल हो गया। अमात्य ने निवेदन किया—‘राजन्’ घबराइये नहीं घबराने वाला योद्धा रणक्षेत्र में जूझ नहीं सकता।

अमात्य की प्रेरणा से पुनः को राज्यभार सँभलाकर महाबल मुनि बने।^{१२} दुष्कृत्यों की आलोचना की और बावीस दिन का सपारा कर समाधि पूर्वक आयुष्य पूरा किया।^{१३}

५२ आमेत्युचित्वा स्वतुत स्वे वः प्रत्यतिष्ठित ।

महाममस्तदाचार्य प्रासादे प्रतिमामिव ॥

—विषण्डि १।१।४५२

(क) सुतायातिवसास्याय स्वा रायं समुद्धिमन् ।

सर्वायापृच्छन् मन्वासीन् पर स्वातन्त्र्यमायित ॥

—महापुराण ५।२२वा१११

५३ (क) बावीसदिनसे मत्तपचक्षुःशर काट गरिष्ठम् ।

—आवश्यक मन वृ प १५५।२

(ख) आपसक हृग्निमद्रीवावृत्ति प ११६ ।

(ग) समाहित स्मरन् पञ्चपरमेष्ठिनमस्त्रियाधु ।

दाविशति विनाम् कृत्वाऽप्यन स व्यपद्यत ॥

—विषण्डि १।१।४५२। पृ १७

(घ) मायन्वीर्यं इताह्वारक्षरीत्वायसपर ।

मुक्तालि समाक्षद् भीरुसन्माममूढयो ॥

—महापुराण ५।२३।११३

देहाहारपरित्यागप्रतमास्थान भीरवी ।

परमाराधनमुद्धि स मेने मुसमाहित ॥

—महा ५।२३३।११४

दाविशतिदिनाभ्येष कृतसन्नेखना विधि ।

वीनितान्ते समपाय मन स्व परमेष्ठिपु ॥

—महा पर्व ३। प्रलोक २४८। पृ ११५

इस प्रकार धन सार्थवाह का जीव, जो अब तक आध्यात्मिक विकास की प्रथम भूमिका—सम्यग् दर्शन—तक ही पहुँच पाया था, इस भव मे अधिक अग्रसर हुआ। इस बार उसने चतुर्थ गुण-स्थान से उमर उठ कर छठे-भातवे गुणस्थान की भूमिका पर पाँव रक्खा।

[५] ललिताङ्ग देव

महाबल का जीव ऐशान कल्प में ललिताङ्ग देव हुआ^{५४} और वह वहाँ स्वयंप्रभा देवी मे अत्यधिक आसक्त बना। जब स्वयंप्रभा देवी वहाँ से फ्यव जाती है तब ललिताङ्ग देव उसके विरह में आकुल-व्याकुल बन जाता है।^{५५} स्वयं बुद्ध भगवाण, जो इसी कल्प मे देव बना था, आकर सान्त्वना देता है।^{५६} स्वयंप्रभा देवी भी वहाँ से

५४ ईसाएँ कल्पे विरिप्यभविमाणे ललियगतो नाम देवो जातो ।

—आवश्यक निष्कर्ष मख० वृ० प० ११८

(ख) ईसाएँ कल्पे विरिप्यभविमाणे ललियगतो नाम देवो जातो ।

—आवश्यक हरिमन्त्रीयावृत्ति प० ११९

(ग) त्रिपष्टि० १।१।४६०।४६४

(घ) देहभारमणोत्सृज्य सङ्गभूत इव सत्त्वात् ।

प्रापत् स कल्पमैशानम् अनल्पसुखसन्निधिम् ॥

सत्रोपपादयाम्यामाम् उदवादि महोदय ।

विमाने श्रीप्रभे रम्भे, ललिताङ्ग सुरोत्तम ॥

—महापुराण ५।२५३-२५४।११९

५५ दस वृक्षादिव दिवस्ततोऽभ्योष्ट स्थयम्प्रभा ।

यापु कर्मणि हि क्षीणे, नेन्द्रोऽपि स्वासुमीश्वर ॥

याक्रान्त पर्वतेनेव, कुलिशेनेव तादित ।

प्रिभाम्भवनदु खेन, ललिताङ्गोऽथ भूच्छिन्ना ॥

—त्रिपष्टि १।१।५१५-५१६

५६ इतश्च रमागिरमणीत्पन्नैराम्यवासर ।

स्मयन्बुद्धोऽप्यात्तदीक्ष श्रीसिद्धाचार्यसन्निवी ॥

ध्यव कर मानवलोक में निर्नामिका नामक बालिका होती है और वहाँ केवली भगवान् के उपदेश से श्राविका बन कर, धाम्य पूण कर पुन उसी कल्प में ललिताङ्ग देव की प्रिया स्वयंप्रभा देवी बनती है।^१ ललिताङ्ग देव मोह की प्रवसता के कारण पुन उसमें भासक्त बनता है।^२ अतः ललिताङ्ग देव नमस्कार महामन्त्र का जाप करते हुए धाम्य पूण करता है।^३

[६] अथर्ववेद

वहाँ से अथर्वकर ललिताङ्ग देव का जीव अम्बूद्वीप की पुष्कलावती विजय में लोहार्गल नगर के अधिपति सुवराजध सम्राट की पत्नी लक्ष्मी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ।^४ अथर्वजय नाम दिया गया।^५

धुधिर निरसीधार पानयित्वा व्रतं धुधी ।

ऐशाने हृदयमरिष्य इन्द्रसामानिकोऽभवत् ॥

स पूषमवसन्वर्षात् वधुवत् प्रेमवत्कुर ।

आस्वावयितुमित्युचि ललिताङ्गमुदारयी ॥

—त्रिबन्धि ११।५२ -५२२

५७ पत्न्योपमपृषक्त्वावशिष्टमायुर्वदास्व य ।

तद्योवपादि पुष्य स्व प्रेमस्यस्व स्वयंप्रभा ॥

—महापुराण स्तो २८९ व ५ पृ ११८

५८ सवा स्वयंप्रभाऽऽयासीत् परा लोहार्गभूमिका ।

धिर मधुकरस्यैव प्रत्यक्षा ज्ञेयमन्वरी ॥

—महापुराण स्तो २८८ पर्व ५ पृ ११८

५९ नमस्कारपदाप्युच्य अमुष्यमवसन्वर्षात् ।

साप्यसौ मृकृमीदृश्य करो प्रायाव क्यताम् ॥

—महापुराण स्तो २८९ पर्व ५ पृ १२२

६ (क) पुस्तलावनिजए लोहम्यलनगरसामी वहरजधो नाम राजा जातो ।

—आथर्वक हरिमहीमावृत्ति ० पृ ११६

-(ख) तयो वा-कसए पदकल इहेव जनुदीव दीव पुस्तलावनिजए लोहम्यलनगरसामी वहरजधो नाम राजा जातो ।

—आथर्वक मस ० पृ १५८

महापुराणकार ने माता का नाम वसुन्धरा और पिता का नाम वज्रबाहु^{१३} और नगर का नाम उत्पलखेटक दिया है ।^{१४}

स्वयंप्रभा देवी भी वहाँ से आयु पूर्ण कर आचार्य श्री हेमचन्द्र के अभिमतानुसार पुण्डरीकिणी नगरी के स्वामी वज्रसेन राजा की धर्मपत्नी "गुणवती" रानी की कुक्षि में उत्पन्न हुई । जन्म के पश्चात् उसका नाम 'श्रीमती' रखा ।^{१५} आचार्य श्री जिनसेन व आचार्य

(ग) जम्बूद्वीपे तत पूर्वदिदेहेषूपसागरम् ।
महानगरात् स्रोताभिधानाया उत्तरे तटे ॥
विजये पुष्कलास्या सोहार्णवमहापुरं ।
राम सुवर्णजट्टस्य सक्त्या पत्न्या कुतोऽभवत् ॥

—त्रिपटि० १।१।६२४-६२५

६१ अथ कन्दलितानन्दावभुज्य दिवसे शुभे ।
वज्रजट्ट इति श्रीती पितरी नाम चक्रतु ॥

—त्रिपटि० १।१।६२६

६२ वज्रबाहु पतिस्तस्य षष्ठीयास्त्रापरोऽभवत् ।
कान्ता वसुन्धरास्यासीद् द्वितीयेव वसुन्धरा ॥
तयो सूनुरभूद्देवो ललिताङ्गस्ततश्च्युत ।
वज्रजट्ट इति स्यात्ति वधदम्भयतां यताम् ॥

—महापुराण स्तो० २८।२६ पं० ६ पृ० १२२

६३ जम्बूद्वीपे महामेरो विदेहे पूर्वदिग्गते ।
या पुष्कलावतीत्यासीत् जानमूर्धिमनोरमा ॥
स्वर्गमूर्तिविशेषा ता पुरमुत्पलखेटकम् ।

—महापुराण स्तो० २६।२७ पर्व० ६। पृ० १२२

६४ स्वयंप्रभाऽपि दुर्धर्ता, कालेन क्रियताऽप्यय ।
धर्मकर्मणि सतीना, व्यच्योष्ट ललिताङ्गवत् ॥
मगया पुण्डरीकिण्या विजयेऽप्येव चक्रिण ।
वज्रसेनस्य भार्याया, सुभव यां सुताऽभवत् ॥
रावणोपातितामिव्या, श्रियाऽप्री ययुता तत ।
श्रीमतीत्यभिधानेन पितृभ्यामप्यधीयत ॥

—त्रिपटि० १।१।६२७-६२८

श्री दामनन्दी के मतानुसार उनके पिता का नाम बज्रदन्त और माता का नाम लक्ष्मीमती था।^{१८}

एक बार श्रीमती महल की छत पर घूम रही थी कि उसी समय सन्निकटवर्ती उद्यान में एक मुनि को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। केवल महोत्सव करने हेतु देवगण आकाशमाग से आ-जा रहे थे।^{१९} आकाश माग से जाते हुए देवसमूह को निहार कर श्रीमती को पूवभव की स्मृति उत्पन्न हुई। उसने उस स्मृति को एक पट्ट पर चित्रित

(ब) नाम्ना श्रीमती स्वाता वपनिष्ठाकनागुण

—पुराणसार २५।१।६

६४ तस्या पतिरमुष्मान्ना बलवन्तो गृहीपति ।

महापुराण स्तो ३८। पव ६ पृ १५४

लक्ष्मीरिवात्म कान्ताङ्गी लक्ष्मीमतिरमुष्मिवा ॥

—वही स्तो ३८। प ६ पृ १२४

तयो पुत्री वपुषातो विभक्ता श्रीमतीति वा ।

—वही स्तो ६ पव ६ पृ १२४

(क) पुराण सार सङ्ग्रह २५।१।६

६५ (क) एतो भूगोरमोक्षाने सुस्थितस्य महामुने ।

उत्पन्ने वैवस्वताने वरदाऽऽवच्छ्रित सुरान् ॥

—विपदि १।१।६३६

(ख) तदतदभवत्तस्या सविधानकमीदृशम् ।

अशोचरमुरोत्तस्मिन् पुरे कौवस्वतमवे ॥

मनोहराभ्यमुत्तमम् अम्बासीन तमचितुम् ।

देवा सम्पादुगस्त्वनिमाना सह सम्पदा ॥

—महापुराण वनो ८३-८६ पर्व ६। पृ १२०

६७ दृष्टुर्गमया वरुणमिष्टुपुण्ड्रकारिणी ।

जगन्तर्गाऽपुत्राणि निष्ठास्वप्नमिवाऽस्थिरा ॥

—विपदि १।१।६३४

(ग) देवानां लयात्तस्या प्राग्जन्मस्मृतिरास्त्वबू ।

—महापुराण वनो ८३ पर्व ६। पृ १२०

(घ) पुराणसार सङ्ग्रह २६-२७-१।६

किया^{६८} श्रीर श्रृपने प्रति स्नेहमूर्ति पण्डिता परिचारिका को प्रदान किया। पण्डिता परिचारिका प्रस्तुत चित्रपट को लेकर राजपथ पर, जहाँ चक्रवर्ती बज्जमेन की वर्षगाँठ मनाने हेतु अनेक देशों के राजकुमार आ-जा रहे थे, पड़ी होगई।^{६९} बज्जजघ राजकुमार भी, जो पूर्वभव में ललिताङ्ग देव था, वहाँ आया हुआ था। उसने ज्यों ही वह चित्र-पट्ट देखा त्योंही उसे भी पूर्वभव की स्मृति जागृत हो गई। उसने चित्रपट्ट का साग इतिवृत्त पण्डिता परिचारिका को बताया, और पण्डिता परिचारिका ने श्रीमती को निवेदन किया।^{७०} श्रीमती नी प्रेम्णा से परिचारिका ने चक्रवर्तीमन्नाट् बज्जमेन को श्रीमती और बज्जजघ के पूर्वभव का परिचय प्रदान किया।^{७१} चक्रवर्ती बज्जमेन ने 'श्रीमती' का बज्जजघ के साथ पाणिग्रहण कर दिया।^{७२}

६८ मया विनिश्चित पूर्वभवसम्बन्धिपट्टकम् ।

—महापुराण दत्तो० १७० पर्व ६, पृ० १३२

६९. चम्रिणा बज्जसेनय वर्षप्रन्धिरभूत् तदा ।

प्रत्तारादावकुत्तथ, भूयामो धनुषाधवा ॥

पण्डिता राजमार्गेऽथ, तमामेभ्यपट स्पृष्टम् ।

विस्तार्य तस्वी श्रीमत्या मनोरथमियाऽतबुम् ॥

—त्रिपटि १११६४६-६५०

७०. भद्रारामद्वयसम्बन्ध पूर्वाऽनेभि सविस्तरम् ।

श्रीप्रभाषिक्ता साक्षात् पदयामीवेह मासिकम् ॥

अथ स्त्रीरगमपैद नितरामनिरोधते ।

स्वयम्प्रभाङ्गसवादि विवित्राभरणोज्ज्वलम् ॥

—महापुराण दत्तो० १२१-१२२ पर्व ७, पृ० १४८

(६) आमेति पण्डिताऽप्युक्ता श्रीमत्या पात्समित्यथ ।

तत्तत्तर्वमास्थत् हृदयविषयकरणीपथम् ॥

—त्रिपटि १११६८२

७१. नितुम्भशपमा सच्च, श्रीमती पण्डितामुक्ता ।

अस्वातन्त्र्य फुलस्त्रीणा, धर्मो नैधमिको यत् ॥

—त्रिपटि १११६८३

७२. तदगिरामुद्धित सद्य स्तमितेनेव वह्नि ।

यथसेनपुत्रो बज्जजघमाबुद्धयत् तत् ॥

महापुराणकार ने भी प्रस्तुत प्रसंग को कुछ हेर फेर के साथ निरूपित किया है पर तथ्य यही है ।^{१३}

श्रीमती के साथ वज्रजंघ पुन भोगो मे आसक्त हुआ ।^{१४} सम्राट् सुवर्णजघ ने वज्रजघ को राज्य देकर स्वयं दीक्षा ग्रहण की ।^{१५} श्रीर वज्रवर्ती वज्रसेन ने भी अपने पुत्र पुष्कलपाल को राज्य देकर दीक्षा ली ।^{१६} वह तीर्थङ्कर हुए ।^{१७} वज्रवर्ती वज्रसेन के समय

कुमारपूजे मृपालोऽस्मात्पुत्री श्रीमतीत्वयी ।

ममत्विवाना भवतो वृहिणी पूर्वजन्मवत् ॥

तमेति प्रतिपन्ने च कुमारोदराह्वय ।

श्रीमती मूपति प्रीतो हरिलोकोदधि त्रियम् ॥

—त्रिपठि १।१।६५५ से ६५७

(ख) तत पात्री महामातु वज्रजङ्घोऽग्रहीमुवा ।

श्रीमती तमुदुस्पर्शमुत्तामीक्षितमोक्षन ॥

—महापुराण स्तो० २४६ पं ७ पृ० १६

७३ महापुराण पं ६-७ पृ १२२ ख १६ ।

७४ (क) विलम्ब वज्रजङ्घोऽपि श्रीमया सह कान्तया ।

जवाह श्रीमया राज्यमम्भोजनिव कुञ्जर ॥

—त्रिपठि १।१।६६१

(ख) महापुराण स्तो १-३२ पं ३ पृ १६७-१६८

७५ शीघ्र शात्वा वज्रजङ्घ स्वराजङ्घोऽथ मूपति ।

राज्ये निवसयामास स्वयं दीक्षामुपाहरे ॥

—त्रिपठि १।१।६६६

(ख) अग्निविष्णु मुक्त राये वज्रजङ्घपतिष्ठितम् ॥१६

स राज्यमोगनिविष्णु तूर्णं वमधरादिके ।

पूर्वं सीढं सहस्राढमित्यर्थात्तमुपाहरे ।

—महापुराण स्तो० ३६-३७ पं ५ पृ १७१

७६ भूतो पुष्कलपादस्य दत्त्वा राज्यधियं निजाय ।

प्राजापती वज्रसेनोऽपि वज्रे तीर्थङ्करत्वं च ॥

—त्रिपठि १।१।६६०

७७ त्रिपठि १।१।६६ ।

लेने के पश्चात् सीमाप्रान्तीय राजा पुष्करपाल की आज्ञा का उसघन करने लगे । वज्रजघ उसकी सहायताार्थ गया और शत्रुओं पर विजय वज्रयन्त्री फहराकर पुन अपनी राजधानी लौट रहा था कि उसे ज्ञात हुआ कि प्रस्तुत अरण्य में दो मुनियों को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है और उनके दिव्य प्रभाव से दृष्टिविष सर्प भी निर्विष हो गया है ।^{१८} वज्रजघ मुनियों के दर्शन हेतु गया । उपदेश सुन वैराग्य उत्पन्न हुआ ।^{१९} पुत्र को राज्य देकर समय ग्रहण करूँगा, इस भावना के साथ वह वहाँ से प्रस्थान कर राजधानी पहुँचा ।^{२०} इधर पुत्र ने सोचा कि पिताजी जीते जी मुझे राज्य देगे नहीं, तदर्थ उसने उसी रात्रि को वज्रजघ के महल में जहरीला घुघ्राँ फैलाया, जिसकी गंध से वज्रजघ और 'श्रीमती' दोनों ही मृत्यु को प्राप्त हुए ।^{२१}

महापुराणकार आचार्य जिनसेन ने प्रस्तुत घटना का इस रूप में चित्रण किया है—“वज्रदन्त चक्रवर्ती ने अपने लघुभ्राता धर्मिस्तोज

७८ उत्सेवे केवलज्ञान, हयोरनाऽप्रगारयो ।

तत्र देवाकमोक्षोत्तमं हविषो निविषोऽभवत् ॥

—विपट्टि १।१।७०२

७९ विपट्टि १।१।७०८-७०९ ।

८० तद्विधानी पुरी गत्वा, दत्त्वा राज्यं च सुवर्च ।

हस्तस्यैव गतिं हस्तं श्रियिष्येऽहं क्षितुर्वन्ति ॥

सवादिन्या व्रतावानेऽनुत्कृतमनसेन स ।

सहित श्रीमतीदेव्या, प्राप लोहार्णवपुरम् ॥

—विपट्टि १।७।१०-७।११

८१ पुत्तेन रज्जुकलिना वासधरे जोगधूवज्ययोनेन मारितो ।

—भाव० वस्त० वृ० प० १।५

निषधूप म्यधात् पुत्रस्तयोस्तु सुखमुप्तयो ।

कस्त निरोद्धूमीक स्यात्, गृहादन्निमिवोत्पिहम् ?

सद्धूपधूर्परिकर्जवाक्यमिदं कुरैरिव ।

प्रागप्रविष्टेस्ती सखो, दम्पती मृत्युमापतु ॥

—विपट्टि १।१।७।१४-७।१५

के पुत्र पुण्डरीक को राज्य देकर दीक्षा ली। पुण्डरीक अल्पवयस्क था अतः चक्रवर्ती की पत्नी लक्ष्मी ने वज्रवज्र को सन्देश भेजा।^{८२} उस सन्देश से वह सहायताय प्रस्थान करता है कि माग में दो चारण लब्धिवारी मुनिवरो के दशन होते हैं। वह उन्हें आहार दान देता है। 'घोर मुनि वज्रवज्र व श्रीमती ने आगामी भावों का निरूपण

८२ चक्रवर्ती वन आतः समुत्पत्तिवारक ।
पुण्डरीकस्तु राज्येस्मिन् पुण्डरीकानन स्थित ॥
एव चक्रवर्तिनो राज्यं क्वाय वानोऽतिदुर्बल ।
तव्य पुङ्गवर्षाभिः भरे दम्भो निमोहित ॥
वानोऽयमवले चावा राज्यम्भेदमनायकम् ।
विषीर्णप्रायमेतस्मै पालनं त्वयि सिध्यते ॥
अकालहृष्टं तस्माद् आमन्त्र्य महाविद्या ।
त्वयि त्वत्सन्निधानेन युवा, राज्यमधिपतिवद् ॥

—महापुराण स्तो ६५-६८ पर्व ॥ पृ १७५

(क) नगर्या पुण्डरीकाङ्ग प्रतिष्ठाप्य स्वपुत्रजम् ।
प्रवृत्तान् नरेन्द्रोन्धो बहुनि अभिवैरही ॥

—पुराणसार संग्रह वाचस्पती स्तो ॥ १९ स २ पृ २४

८३ तस्मिन्नेवाङ्गि सोऽङ्गाय प्रस्थापयकरोः कृती ।

—महापुराण स्तो ११८ पर्व ॥ पृ १७७

(क) चिन्तागतिमनोमलोस्तयो अत्वा तु वाचिकम् ।
निराशता लक्ष्मीं तु तूष्णं भतिवरोदिति ॥

—पुराणसार स्तो ३६ सप्त ९ पृ ९४

८४ ततो ह्यनुरागिण्य 'श्रीमान्म्वरपारण ।
समं सागरखेनेन सन्निवेशमुपायवी ॥

—महापुराण स्तो १६७ पर्व ॥ पृ १८१

अद्यादिगुणसम्पत्त्या पुनर्वन्म्या विमुक्तिनाक ।
दन्ता विविधनाहार पञ्चाशद्वर्षाव्ययाय स ॥

—महापुराण स्तो १७३ पर्व ॥ पृ १८२

करते हुए बताते हैं कि सम्राट् आप आठवें भव में तीर्थङ्कर बनेंगे ।^{८५}
'श्रीमती' का जीव प्रथम दानधर्म का प्रवर्तक श्रेयास होगा ।^{८६}
मुनि की भविष्यवाणी को सुनकर दोनों अत्यन्त आह्लादित
होते हैं ।

वहाँ से सम्राट् वज्रजंघ पुण्डरीकिणी नगरी जाकर महारानी
को आवेष्ट करके हैं और उनके राज्य की सुव्यवस्था कर पुन अपने
नगर लौटते हैं ।^{८७}

एक दिन सम्राट् का शयनागार अगार आदि सुगन्धित द्रव्यों
की तीव्र गन्ध से महक रहा था । द्वारपाल उस दिन गवाक्ष खोलना भूल
गया, जिसमें झूप के छुए के कारण स्वास रुक जाने से दोनों की
मृत्यु हो गई ।^{८८}

(ख) वत्सा सागरसेनाय दान दमवराय च ।

आदाय नवपुण्यानि सम्प्राप्ती पुण्डरीकिणीम् ॥

—पुराणसार स्तो० ३८ पर्व २, पृ० २४

८५ इतोष्टमे भवे भाविष्यपुनर्भवता भवान् ।

भविष्यामी च तत्रैव भवे सेतस्यन्त्यसक्तवम् ॥

—महापुराण स्तो० २४४। पर्व ८, पृ० १८७

८६ श्रीमती च भवतीर्षे दानतीर्षप्रवर्तक ।

धैर्यान् मूला पर श्रेय श्रयिष्यति न सक्षय ॥

—महापुराण स्तो० २४६ पर्व ८, पृ० १८७

८७ दृष्ट्वा देवी कुमारस्वाप्तनुशिष्य बभौऽमृतं ।

किञ्चित्कालमुषित्वाय जग्मसु स्वपुर ॥

—पुराणसार स्तो० ४० द्वि० स० पृ० २४

८८ कालागुस्तूष्पाब्धे क्षयितो भगवैश्वरिणि ।

मृत्योत्तरकुसुमास्तामासु दानेन दम्पती ॥

—पुराणसार स्तो० ४१ पर्व० २, पृ० २४

(ग) यय कालागुस्तूष्पामधूमाधिवास्ति ।

मणिप्रदीपकोद्योतद्वरीकृततमस्तरे ॥

[७] युगल

वही से दोनों ही आयुपूर्ण कर उत्तर कुक्ष में युगल-युगलिनी बने ।^{१६} इसके अतिरिक्त श्वेताम्बर ग्रन्थों में अन्य बरान नहीं है ।

महापुराण व पुराणसार के मन्तव्यानुसार उस समय उस युगल युगलिनी को सूर्य ब्रह्मदेव के गगनगामी विमान को निहारकर जाति स्मरण होना है ।^{१७} और उसी समय वहाँ पर सचिबारी मुनि भासे हैं ।^{१८} ममन कर वे उनसे पूछते हैं कि हे ब्रह्म ! आप कौन हैं और कहाँ से आये हैं ?

तत्र वातायनद्वारपिषाणावष्टभूमके ।

केशसत्कारधूपोद्यद्भूमेन सप्तमुच्छ्रिता ॥

निस्त्रोन्मेषासद्यो स्थित्याद बन्ध किञ्चिद्विवाकुलो ।

धम्पती तौ निष्क्रम्ये दीपनिद्रानुपेक्षु ॥

—महापुराण स्तो० २१ २६ २७ २८ पं ६ प १६२

४६ अथोत्तरकुक्ष्यतामस्यो दुग्मरूपिणी ।

एकचित्ताविपन्नता गतिरेका हि धायते ॥

—निबन्ध १११७१६

(क) मरिऊन उत्तरकुक्षय समारिबो मिहुनगो जातो ।

—आवश्यक मस प्र ५० १३५

(ग) मरिऊन उत्तरकुक्षय समारिबो मिहुनगो जातो ।

—आवश्यक हरिमयीयावृत्ति प ११५१

६ सूर्यब्रह्मदेवस्य नमोवाप्ति विमानकम् ।

हृद्वा चातिस्मरो मूला प्रकुक्षं प्रियया संनय ॥

—महापुराण स्तो २२ पं ६ प १६५

(ख) नदाचित्सुखदेवस्य हृद्वा वान [वि] विमानकम् ।

अथ सस्मरुर्जातिमन्त्रोऽन्यप्रियवतिनी ॥

—पुराणसार शम स्तो ४४ पं २ प २६

६१ तावच्चारणयौत्रुष्य दूराद्यावन्मन्त्रवत ।

सञ्च तावन्पुष्टहन्ता ज्योत्स्न समवेतरु ॥

—महापुराण स्तो ६६ पं ६ प १६५

उत्तर में ज्येष्ठ भूति न गवताया कि 'पूर्वा भन मे जिग समग
पुद्गारा जीन महानन राजा ना उर सगम मे पुद्गारा स्वर्गमुक्त मन्त्री
ना।' १५ शंकर भाष्य कर मे गीर्वा शर्व मे स्वयम्भ विमान मे
समिपूत सामक देन ना। तदा से प्रच्युत होकर मे पुष्करीकिगी
पानी से राजा प्रसंगेन का ज्येष्ठपुत्र प्रीतिकर हुआ। भरी माता का
पाग सुन्दरी है और नापुत्रा का नाभ प्रीतिदेय है, जो सप्रति मेरे
साथ ही है १६ एव दोनों ही स्वात्मा ने स्वर्गप्रभ विनयज के समीप
सीधा राह कर स्यामन मे शनर्गिज्ञान तथा चारण उद्वि प्राप्त की
है १७ आत्मको गह्रा जानकर एव आत्मका समन्वय स्वी रतन देने के
लिए आन है।'

(म) आत्मको आरणी नीधन गर्भिनिनी विगातने।

मुग्धा गणभ ममज्ज, क मूयसायदा कुतः ?

—पुराणसार ४७०, पर्व २, पृ० २६

४२. एवं निदिध मं स्वर्गमुक्त यदाऽमुता गमुक्त धी।

महात्मनमे श्री भवे कर्तव्यहर्षणम् ॥

—महापुराण ४७०, पर्व ० ६, पृ० १८६

(न) यदायाहे स्वर्गमुक्तमनायायं सुगमपथः।

भीषमं भविष्यताम्ना एव ज्ञाय स्वयम्भ ॥

—पुराणसार ४६१, २२६

४३. महापुराण ४७०-१०६ पर्व ० ६ पृ० १८६।

(म) गच्छुतः पुष्करीकिगी सुन्दरी-प्रसंगपथोः।

आता प्रीतिकुन्दनायं ज्ञायाम् प्रीतिकराऽरम्भम् ॥

—पुराणसार ४७१, २२६

४४. स्वयम्भप्रक्रियोपान्ते भीक्षिता यामागन्ति।

सामभिज्ञागमाकाशचामत्स्य स्यामगात् ॥

—महापुराण ११०१, १८६

(न) स्वयम्भप्रार्तव पार्थे भीक्षितो पाप्मणीभिः।

—पुराणसार ४६१, २२६

सम्यक्त्व रूपी रत्न से बढ़कर विश्व में न कोई वस्तु है न हुई है और न होगी ही। इसी से भव्य प्राणियों ने मुक्ति प्राप्त की है तथा प्राप्ति प्राप्त करने। अतएव सम्यक्त्व सबसे श्रेष्ठ है।^{१५} जब देशनालब्धि और काललब्धि आदि बहिरंग कारण और कारण लब्धि रूप अन्तरंग कारण मिलता है तभी भव्यप्राणी विशुद्ध सम्यग्दर्शन का पात्र बन सकता है।^{१६} जो पुरुष एक अतृप्त हृत् के लिए भी सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है वह इस ससार रूपी बेल को काट कर बहुत ही लघु कर देता है। इस प्रकार सम्यग्दर्शन के महत्त्व को समझाकर और दोनों को रत्नत्रय में आकर रत्न सम्यक्त्व को लेकर वे चारणमुनि अपने स्थान चले गये।^{१७}

६५ इतोऽप्यनुसार नास्ति न भूत न भविष्यति ।

इहैतस्मिन्नि सिद्धात्तस्मात्सम्यक्त्वमुत्तमम् ॥

—पुराणसार ४६।२।२६

६६ देशनाकाललब्ध्यादिबाह्यकारणसम्पत्ति ।

भक्त करणसामग्र्यं वा भव्यात्मा स्यात् विशुद्धकृत् ॥

—महापुराण ११६।६।११६

६७ लभ्यतर्हर्षाणो जीवो महत्तमपि पश्य य ।

ससारमतिरुक्ता क्षित्वा कुरुते ह्यसिमीमसी ॥

—महापुराण ११५।६।११५

६८ इत्था ताम्ना निरालास्य कथाम्बरधारिणी ।

—पुराणसार ४६।२।२६

(क) इति प्रीतिकुर्यान्भार्यवचनं च प्रमाणम् ।

वचनानिरास्ये सम्यग्दर्शनं प्रीतमानस ॥

पुनर्द्वन्द्वमस्तत्त्वार्थं । उद्वमं वा स्म विस्मर ।

इत्युक्तवान्द्वितीयं सत्यं चारणी व्योमचारणी ॥

—महापुराण १४५।१४७।६। २ २-२ ३

[८] सौधर्मकल्प

वहाँ से वे मायु पूर्ण कर सौधर्मकल्प में देव बने ।^{१०९} महापुराः
तथा पुराणसार से उनका नाम श्रीधर देव लिखा है ।^{११०}

[९] जीवानन्द वैद्य

वहाँ से च्यवकर घक्षासार्थवाह का जीव जम्बूद्वीप के क्षितिप्रतिष्ठ
नगर में सुदिधि वैद्य का पुत्र जीवानन्द वैद्य बना ।^{१११} उस समय
वहाँ पाँच अन्य जीव भी उत्पन्न होते हैं । प्रथम सन्नाट्पुत्र महीवर,

६६ ततो रोहम्ने कण्ठे देवो जयधम्नो ।

—आवश्यक विपुक्ति, मत० पृ० १५८

(ग) ततो रोहम्ने कण्ठे देवो जायो ।

—आवश्यक हारिभग्वीया वृत्ति, पृ० ११६।१

(ग) क्षोभानुरूपमावुषं पूरयित्वा तथा बुधो ।

तो विपद्योदयता, सौधर्म स्नेहसी सुरो ॥

—त्रिपष्टि १११।७।१७

(घ) धन्ते गृहीतसम्पत्सु मृत्वा सौधर्मनीयसु ।

—पुराणसार ५१।२।२६

१०० विमाने श्रीप्रणे तत्र नित्यासीने स्फुरत्प्रभ ।

य श्रीमान् वज्रजक्षाय श्रीधराय सुरोऽभवत् ॥

—महापुराण १८५।६।२०६

(ग) श्रीप्रणे श्रीधरो जसो भागो देव रघवप्रभे ।

गम्यत्वात्त्रैणगुम्भित्वा साऽऽर्जो जात स्वयप्रभ ॥

—पुराणसार ५२।२।२६

१०१ ततो जाजगरा धदक्य महाविदेह्यासे मितिपद्विते नगरे विजयपुत्रो
जामातो ।

—आवश्यक गत० वृत्ति० पृ० १५८

(ग) आवश्यक पूर्ण० पृ० १३२ ।

द्वितीय मन्त्रीपुत्र मुबुद्धि तृतीय साधवाहपुत्र पूर्णभद्र चतुर्थ अष्टि
पुत्र गुणाकर और पाँचवाँ ईश्वरदत्तपुत्र केशव [श्रीमती का जीव]
इन छहों में पय-पत्नी सा प्रेम था ।^{१०२}

अपने पिता की तरह जीवानन्द भी आयुर्वेदविद्या में प्रवीण
था ।^{१०३} उसकी प्रणिभा की नेत्रस्विता से सभी प्रभावित थे । एक दिन
सभी स्नेहों साथी वार्तालाप कर रहे थे कि वहाँ एक दीधतपस्वी भिक्षा
के लिए आये । वे गृहस्थाश्रम में पृथ्वीपाल राजा के पुत्र थे जिन्होंने
राज्यश्री को त्यागकर उग्रमनस्या आरम्भ की थी । असमय व
अपेक्ष्य भोजन के सेवन से वे कृमि-कुष्ठ की भयंकर व्याधि से ग्रसित
हो गये थे ।^{१०४} उन्हें निहारकर समाट पुत्र महीधर ने कहा—मित्रवर !

१० (क) उत्तरकुव सोहमे विन्दे तेनिश्चिन्मस्त तत्पुत्रो ।

रायमुक्तेष्टिमन्त्रामत्पाहमुवा वयसा से ॥

—आवश्यक विपुक्ति या ११६

(क) पद्विगत तु वसो तद्विषमेपाहवासा से इमे चत्वारि
वयसा मगुरता अहिरता त वहा—रामपुत्रो सेष्टिपुत्रो
जमज्वपुत्रो सत्पवाहपुत्रोति । ते सहस्रवडिता ॥
पसुनीलिवा वसस्तत्पवाहजीवोऽवि महाविज्जो वासो ।

—आवश्यक मत वृ ५ ११५

(ग) आवश्यक वृत्ति वृ १३२ ।

(घ) आवश्यक हरिमन्त्रायारुति वृ ११६

(ङ) विपुक्ति १।१।७१६ से ७२८

(च) वलसूत्रार्थ प्रबोधिनी—राजेन्द्रसूरि वृ २२१

१०१ विदाग्धकाराऽऽपुवद जीवानन्दोऽपि पत्कम् ।

अष्टाङ्गनीपमीरुषाऽपि रसवीर्यविपाक्य ॥

—विपुक्ति १।१।७२६

१४ एतदा मन्त्रपुत्रस्य जीवानन्दस्य मन्दिरे ।

एतेषा सिष्ट्यामेक सप्तमिसार्धमायवी ॥

पृथ्वीपालस्य राजा न सुनुर्नाम्ना गुणाकर ।

राज्य मलमिषोत्सृज्य अमत्तमाज्यमान्दे ॥

आप अन्य की चिकित्सा करते हैं, चिकित्सा करने में कुशल भी हैं, पर मुझे अत्यन्त परिताप है कि आपके अन्तर्मानस में दया की निर्मल ओतस्विनी प्रवाहित नहीं हो रही है। कृमिकुष्ठ रोग से ग्रस्त मुनि को देखकर भी आप चिकित्साहेतु प्रवृत्त नहीं हो रहे हैं। १०५

प्रत्युत्तर में जीवानन्द ने कहा—मित्र ! तुम्हारा कथन सत्य है ,

हरिदोष इव श्रीष्मात्पेन तपसा कुल ।
कृमिकुष्ठाभिसूतस्य सौज्ज्वासाप्यभोधनात् ॥
तर्थाज्ञीण कृमिकुष्ठाधिष्ठितोऽपि स भेषजम् ।
यथाचे न वर्षात् काशानपेसा हि मुमुक्षव ॥
गोपूष्कानिषानेन, गेहस्य गेह परिभ्रमम् ।
पठस्य पारणे दृष्ट, स तैर्निजगृह्यकृणो ॥

—विपण्डि १।१। ७३२ से ७३६

१०४ वेज्जसुयस्स म नेहे किमिच्छुद्वोवरुक्क चह ददुक्क ।
वेत्ति य ते विज्जसुय करेहि एसस्स तेनिच्छ ॥

—आवश्यकनियुक्ति गा० १७०

१०६ { (र) आवश्यक शृणि पृ० १३२
(ग) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११६
(घ) ते वसतया अन्नया कयाह तस्स विज्जस्स धरे एगतो सहिया तन्निसज्जा अचन्ति, तस्य साहू महप्पा किमिच्छुणे गहितो निव्वानिमित्तमइगतो, तेहि सप्यणय सहास सो विज्जो भण्णइतुग्गेहिं नाम सब्बो लोगो खाइयब्बो, न तुग्गेहिं तवस्सिस्स वा अणाहस्स वा किरिया कायब्बा ।

—आवश्यक वस्तु० पृ० ११५

(३) महीपार कुमारेण, स किञ्चित् परिहासिना ।
जीवानन्दो निजगदे, जगदेकमिषक् तत ।
अस्ति व्याधे परिज्ञान ज्ञानमस्त्वोपधस्य च ।
चिकित्साकोषन चाऽस्ति, नास्ति च केवल कृपा ॥

—विपण्डि १।१। ७३७—७३८

(४) कल्याणं प्रबोधिनी पृ० २२१ ।

पर इस रोग की चिकित्सा के लिए जिन औषधियों की आवश्यकता है वे मेरे पास नहीं हैं।^{१०८}

मित्रों ने कहा—बताइये किन किन औषधियों की आवश्यकता है ? वे कहाँ पर उपलब्ध हो सकेंगी ? हम मूल्य देंगे और जसे भी होगा लाने का प्रयास करेंगे।

जीवानन्द ने कहा—रत्नकम्बल गोशीर्षचन्दन और लक्ष्मपाक तल। पूब की दो औषधियाँ मेरे पास नहीं हैं।^{१०९}

उसी क्षण वे पाँचों साथी औषध लाने के लिए प्रस्थित हुए। औषधियों की सन्वेधना करते हुए एक अष्टी की विपणि पर पहुँचे।^{११०} अष्टी से औषधहेतु जिज्ञासा व्यक्त करने पर अष्टी ने

११ सो नमस्करोमि किं पुत्र मम ओसहाणि काह्वि मत्वि।

—आवश्यक मूल्य वृ पृ १५८

(क) आवश्यक भुजि पृ १३२

(ग) चिकित्सनीय एवाऽहो ! महामुनिरय मया।
जीवधानामतामधी कितु मात्यन्तरायताम्।

—०

१०७ ते भणन्ति अम्हे मोक्ष्य देमो किं ओसह ? चारु
कम्बलत्पल गोशीर्षचन्दन तस्य पुत्र च स
ममवि मत्वि।

५८

५

—आवश्यक मूल्य वृ पृ १५८

(क) आवश्यक भुजि पृ १३२।

(ग) आवश्यक हारिश्चर्या मृत्ति वृ ११६।

(घ) तनक लक्ष्मपाक ये रत्नकम्बलौ माऽस्ति तु।
गोशीर्षचन्दन रत्नकम्बलत्पलाऽऽनयन्तु ततः॥

—निपटि १११।७४९

१८ राहे मत्वि च वत्ता आत्मिक च खेहि चहा अमुगस्त धानियगस्त
मत्वि मोक्षि एवाणि ते मया तस्य सगात्र दो समस्ताणि वेत्त।

—आवश्यक मूल्य भुजि पृ १५८

कहा—प्रत्येक वस्तु का मूल्य एक-एक ताम्र दीनार है। वे उम मूल्य को देने के लिए ज्योंही प्रस्तुत हुए, त्योंही थोड़ी ने प्रश्न किया—ये असूत्य वस्तुएँ किस लिए चाहिएँ ? उन्होंने बताया—मुनि की चिकित्सा के लिए। मुनि का नाम मुनते ही थोड़ी मोचने लगा कि “इन युवकों की धार्मिक निष्ठा अपूर्व है।” उमने बिना मूल्य लिये श्रीपद्मिनी देदी। वे उन वस्तुओं को लेकर वैद्य के पास गये।

जीवानन्द वैद्य भी अपने स्नेही माथियों के साथ उन श्रीपद्मियों को तथा मृत-गोचर्म को लेकर उद्यान में पहुँचा, जहाँ मुनि ध्यान मुद्रा में अवस्थित थे।^{११०} उन्होंने मुनि को वन्दन किया और उनकी स्वीकृति

(ग) आवश्यकवर्णि पृ० १३२।

(ग) आवश्यक हरिभद्रोपावृत्ति ११६।

(घ) अमेध्यामो वयमिति, प्रोध्य पञ्चाङ्ग सत्त्वानम्।

ते यदुविपणिश्रेणी रयस्थान सोऽप्यगान्मुनि॥

रत्नकम्बल-गोक्षीर्षे, मूल्यमावाय यच्छ न।

हस्तुत्तरतैयनिमृदस्ते ददानोऽन्नवीदियम्॥

—त्रिपटि १।१।७४७-७४८

१०६ ततो वागिवगो वसभन्ता भवति—किं देमि ? तं भवन्ति—कम्बल-रयण गोक्षीरानन्दस्य च। तेषु भण्यद् किं एतां ह कञ्च ? ते भवन्ति साहस्र किरिया कायन्वा। तेषु भण्यद्—एव, तो बलाहि मम मोल्लेख, रह रहा वेव गेक्कह, करेह साहसो किरिय।

—आवश्यक मल० पृ० १५६

(ख) तेस्व तेषिन्ध्रमुत्रो कम्बलव चन्दस्य च वागियतो।

—आवश्यक निर्युक्ति या० १७१

(ग) आवश्यक वर्णि, पृ० १३३

(घ) आवश्यक हरिभद्रोपावृत्ति पृ० ११६।

(ङ) त्रिपटि १।१।७५०-७५६।

११०. (क) ते विज्जसुपण्णिद्वो सवो भेतूण ताणि ओरहाणि गया साहसो पास जत्थ सो उज्जाणे पट्ठिम छित्थो, पासन्ति पट्ठिमागम साह।

—आवश्यक मल० पृ० १५६

लिए बिना ही भारोम्य प्रदान करने हेतु सवप्रथम लक्षपाक तैल से मदन किया। उष्णवीर्य तन के प्रभाव से शरीरस्थ कृमियाँ बाहर निकलने लगी तो उन्होंने शीतवीर्य रत्नकम्बल से मुनि के शरीर को आच्छादित कर दिया जिससे वे शरीरस्थ कृमि रत्न-कम्बल में भागई। उसके पश्चात् रत्न कम्बल की कृमियों को मृत-गोचम में स्थापित कर दिया जिससे उनका प्राणघात न हो। उसके पश्चात् पुन मदन किया और रत्नकम्बल से आच्छादित करने पर मातस्थ कृमियाँ निकल आई। तृतीय बार पुन मदन किया और रत्नकम्बल ओढ़ा देने पर अस्थिगत कृमियाँ निकल गई। जब शरीर कृमियों से मुक्त हो गया तो उस पर गोक्षीपचन्दन का लेप किया जिससे मुनि पूर्ण स्वस्थ हो गये।^{१११}

मुनि की स्वस्थता देखकर छोड़ो मित्र अत्यन्त प्रमुदित हुए। मुनि के तात्त्विक प्रवचन को सुन कर छोड़ो को सतार से विरक्ति हुई, उन्होंने दीपा प्रह्वण की और उत्कृष्ट समय की साधना की।^{११२}

१११ ताहे तेत्सेन सो साहु पञ्चम अग्निवितो त चेव तेत्सेन रामभूषाहि सम्म अक्षय तस्मि य अक्षय किमिवा सम्म सञ्जुहा ताहे ते तिगाए, इदंल कनकरयणेश सो साहु पाउतो त सीयल तेत्सेन अ उष्णवीर्य ते किमिया तत्थ सग्गा ताह पुब्बाणिय गोकडेवर पम्पेविम ते सम्म पडिया ततो सो साहु चन्दणेशेण तितो जातो समासलो एव तितिवारे अन्नपिण्डल सो साहु तेहि नीरोणा कतो।

—आवश्यक मत्त वृ प १५६

(क) त्रिपिटि १।१।७५८ से ७७६।

११२ (क) पञ्च ते सङ्गहा जाया पञ्चा सवथा।

—आवश्यक नि मत्त वृत्ति पृ० १५६

(ख) ते पञ्चा साहु जाता।

—आवश्यक दारिमहीयावृत्ति वृ ११७

(ग) ते उदयेकया जातसवथा साजुडमिपी।

श्रीमन्तो अङ्गुदीया मत्त्यज्जसरो पत्तम् ॥

—त्रिपिटि १।१।७८

महापुराण और पुराणसार में जीवानन्द वैद्य का भव नहीं बताया है। उन्होंने लिखा है कि देवलोक से च्युत होकर जम्बूद्वीपस्थ वत्सकावती देश की सुसीमा नगरी में वह सुदृष्टि राजा श्रीर सुन्दर-नन्दा रानी की कुक्षि में सुविधि पृत्र हुआ, और श्रीमती का जीव उसी का पुत्र केजव हुआ।^{११३} केजव के प्रेम के कारण प्रारम्भ में उसके पिता सुविधि ने समय न लेकर थावक व्रत स्वीकार किया।^{११४} और अन्त में दीक्षा लेकर मलेखनायुक्त समाधि मग्ग प्राप्त किया।^{११५}

[१०] अच्युत देवलोक

आयु पूर्ण कर जीवानन्द का जीव तथा अन्य मारी वारहवें देवलोक में उत्पन्न हुए।^{११६}

११३ श्रीमरोऽथ दिवस्थुरथा जम्बूद्वीपमुपाश्रित ।
प्राग्विदेहे भहावत्सविषये स्वयमत्रिय ॥
सुसीमानगरे जज्ञे सुदृष्टिमृषते सुत ।
साधु सुन्दरनन्दाया सुविधिर्नाम गुप्तरा ॥

—महापुराण श्लो० १२१-१२२ पद १०, पृ० २१८

(क) स ममुद्रोपम भोग भुक्त्वाऽत आधरश्च्युत ।
प्राग्विदेहेषु वत्साह्ने सुमीमायामुभां पुरी ॥
देव्या सुन्दरनन्दाया सुदृष्टे सुविधि सुत ।
तत्पुत्रु वैद्यसो नाम्ना सुन्दर्यामितरोऽभवत् ॥

—पुराणसार ६१।६२।२।२८

११४ वृपस्तु सुविधि पुनस्नेहाद् गाहस्थ्यमत्यजन् ।
उत्कृष्टोपासकस्थाने तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥

—महापुराण १५८।१०।२२२

(ख) सुविधि वैद्यस्नेहादुत्कृष्ट आचकोऽभवत् ।

—पुराणसार ६५।२।३०

११५ अवावसाने नैर्वा न्वा प्रथज्यागुपसेदिवान् ।
सुविधिर्विधिनाराज्य, मुक्तिमार्गमनुत्तरम् ॥

—महापुराण १६६।१०।२२२

११६ साहृ तिमिच्छिक्त्वा सामन् देवलोगमगच्छ च ।

—आवश्यक नियुक्ति गा० १७२

महापुराण और पुराणसार के अनुसार भी सुविधि का जीव बारहव देवलोक में ही उत्पन्न हुआ ।^{११}

[११] वज्रनाभ

जीवान^{१२} का जीव देवलोक की आयु समाप्त होने पर पुष्कलावती विजय की पुष्करीकिणी नमरी के अधिपति वज्रसेन राजा की धारिणी रानी की कुम्भि में उत्पन्न हुआ ।^{१३} उत्पन्न होते

(क) महाउय पातइता तम्भुषान पचवि जपा मञ्जुए उववत्ता ।

—आवश्यक हारिमग्रीया वृत्ति ११७

(ग) तता महाउय पातइता सावच्छ उ भूलाप पचवि जपा मञ्जुए कपे देवा उववत्ता ।

—आवश्यक मत वृ ५० १५६

वचपि द्वावसे कल्पेऽभ्युत्तनामनि तेऽभवन् ।

आवसामानिकस्ताह्य न सामान्यफल तप ॥

—विषयि १११७५६

११७ समाधिना तमुत्पात्ताद् अभ्युत्तेऽग्रीऽभवन् विभु ।

हानिगत्सम्भितस्यातपरमायुर्महद्विक ॥

—महापुराण १७ ११ १२२२

(क) समुत्पेदेऽभ्युत्ते कल्पे प्राप्य तत्र प्रसीदितान् ॥

—पुराणसार ६९।२।९

११८ पुष्करिणिनि ए न पुमा ततो युवा वयस्तेजस्य ।

—आवश्यक निर्वृत्ति पा १७२

(क) आवश्यक धृति वृ १२३ ।

(ग) आवश्यक हारिमग्रीयावृत्ति ५ ११७ ।

(घ) ततो देवनोमातो जातस्तए महज्ज वहेव मम्भुहीवे दीवे पुष्कनिदेहे पुष्कनावहनिजए पुष्करिणिणीए नयरीए बहरनेजरओ धारिणीए देवीए उदरे पडमो बहरनाओ नाम पुत्तो जाता ओ पुष्कमव विज्जो भाति ।

—आवश्यक मत वृ ५० १५६

ही माता ने चौदह महास्वप्न देवे । जन्म होने पर पुत्र का ना नाम
"वज्रनाभ" रखा । पूर्व के पाँचो साधियों मे से चार क्रमज बाहु,
सुबाहु, पीठ और महापीठ, नामक उनके भ्राता हुए और एक उनका
सारथी हुआ ।^{११९}

अपने ज्येष्ठ पुत्र वज्रनाभ को राज्य देकर सम्राट् वज्रमेन न
मयम ग्रहण किया, उत्कृष्ट समय की माचना कर कैवल्य प्राप्त किया
तथा तीर्थ की मस्थापना कर वे तीर्थङ्कर बने ।^{१२०}

सम्राट् वज्रनाभ पूर्वभव मे मुनि की सेवा शुश्रूषा करने के
फलस्वरूप पद्मखण्ड के अधिपति चक्रवर्ती सम्राट् बने और जेप भ्राता
माण्डसिक राजा हुए ।^{१२१} दीर्घकाल तक राज्य श्री का उपभोग करने
के पञ्चान् अपने पूज्य पिता तीर्थङ्कर वज्रसेन के प्रभावपूर्ण प्रवचनों
को सुनकर उनके मानस मे, वैराग्य का उदधि उछालें मारने लगा ।

११९ पद्मोज्ज्वल वयरनाभो बाहु सुबाहु य पीठ महापीठे ।

—आवश्यक निरुक्ति गा० १७३

(ख) विपदि० १।१।७६१ से ७६५ ।

(ग) आद्य पीठो महापीठ सुबाहुश्च तृतीयक ।

तूर्वांशम महाबाहु भस्तिर पूर्ववान्धवा ॥ • ८

—पुराणसार ७०।२।३०

१२० तैसि पिबा सित्पयरो निम्बता वाऽपि तथैव ।

—आवश्यक निरुक्ति गा० १७३

१२१ (क) बहरो धक्की जाओ, तैस साह्वेवान्धवेण चक्रवर्दीभोषा
उदिण्या, वयसेसा चत्तारि मठलिया रायणो ।

—आवश्यक हारिमन्त्रीया वृत्ति ११८।१

(ख) वयरनाभो चक्रवर्दी जातो, इयरे चत्तारि मठलिया रायणो,
एव सो वयरनाभो साह्वेवावचचण्णभावेण उदन्ने
चक्रवर्दीभोवे भुज्झ ।

—आवश्यक मस० सू० ५० १५६

अपने प्रिय लघु भ्राताओं तथा सारथी के साथ वज्रनाभ चक्रवर्ती ने प्रव्रज्या ग्रहण की।^{१२२}

मगध ग्रहण करने के पश्चात् वज्रनाभ ने श्रागमों का गम्भीर अनुशीलन-परिशीलन करते हुए चौदह पूव तक अध्ययन किया और अन्य शेष भ्राताओं ने एकादश श्रृङ्गों का।^{१२३} अध्ययन के साथ ही उन्होंने उत्कृष्ट तप तथा अनेक चामत्कारिक लब्धियाँ प्राप्त की तथा परिहृन्त सिद्ध प्रवचन प्रभृति बीस निमित्तों की भारावना से तीव्रदूर नामकर्म का वन्द्य किया।^{१२४}

१२२ इषो य तित्थवरवरसेपस्त समोसरथ सो पितृपामयून वडोहि
वि सहोमरोहि सम्म पम्भतो ।

—आवश्यक मन्त्र ० वृ प १५६

(क) इत्येव वज्रनाभ पीठाव भ्रातृभि सह ।
सममे स्वमितुस्तीव तस्यै सचनदेवक ।

—पुराणसार ७४।२।३

१२३ एगो वडदसपुम्बी—

—आवश्यक त्रिपु लि० पा १७४

(क) सत्य वहरनाभेन चौदस पुम्बाभि अहिन्त्रिमाणि ।

—आवश्यक कृणि पृ १११

(ग) सत्य वहरनाभेन चौदसपुम्बा अहिन्त्रिमा सेताभि वडरो
एकअरसगविक्र जावा ।

—आवश्यक मन्त्र वृ १५।१

(ब) श्रुतसागरपारीनो वज्रनाभोऽमवत् कम्बत् ।
प्रत्यज्ञा द्वादशाङ्गीव चतुर्वैकाङ्गता मता ॥
एकादशाङ्ग या पारीना जाता बाह्यादयोऽपि ये ।
अयोपशयवैनिष्वास्त्रिना हि यतसम्पदः ॥

निपाठि १।१।८३६।८३७

१२४ वहरनाभेन त्रिमुदपरिणामसं वीर्यं द्वापेहि तित्थवरनामवोत्त
कम्म वडं ।

—आवश्यक मन्त्र वृ प १५।१

(क) निपाठि १।१।८८२

बीस स्थानको की^{१८} और दिसम्बर ग्रन्थानुसार सोलह भावनाओं^{१९} की आराधना कर तीर्थङ्कर नाम गोत्र का अनुवन्धन किया। अन्त में मासिक सलेखनापूर्वक पादपोषणमसञ्चारा कर्ममाविपूर्वक प्रायुष्य पूर्ण किया।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि वज्रनाभ के ओष चारों लघु भ्राताओं में से बाहुमुनि मुनियों की वैयावृन्ध करता और मुवाहु मुनि परिव्रान्त मुनियों को विश्रामणा देता—^{१९} अर्थात् उनके हुए मुनियों के अययों का मर्दन धाटि करके सेवा करता। दोनों की सेवा भक्ति को निहार कर नज्जनाभ अत्यधिक प्रसन्न हुए

१०९ मन्व पद्ममेव बडरनामेव बीमाग कारखेहि तित्थयरत्त निवड ।

—आवश्यक बुद्धि० पृ० १३४

(ख) बडरनामेव य विमुद्धपरिचामेव तित्थयरनामगोत्त कम्म यड ति ।

—आवश्यक हारिमद्वीयावृत्ति पृ० ११८

११०. इत्यमुनि महाधर्मा मुनिस्मिरमभावयन् ।

तीर्थकृत्वस्य सम्प्राप्तौ कारणान्मेव पोदन् ॥

—महापुराण ७८।११।२३४

(ख) जगदधर्मापभ्यानि त्रैलोक्यक्षोभणानि च ।

कारणानि च जैनस्य भावयामास पोदन् ॥

—पुराणसार ७।२।३२

१११ (क) एव वाहु गो तेसि यव्वेणि वेयावच्च करेति ।

ओ गो मुवाहु, सो भगवन्ताण ऋत्तिकम्म करेति ।

—आवश्यक बुद्धि पृ० १३३

(ख) वाहु तेम वेयावच्च करेति, जो मुवाहु गो साहुणो सि ।

—आवश्यक हारिमद्वीयावृत्ति पृ० २१८

ताम वन्नासि च माहुण्ण वेयावच्च करेद, जो माहुणो विस्सामिद ।

—आवश्यक मल० वृत्ति०

जैनसंस्कृति की तरह ही बौद्ध-संस्कृति ने भी बुद्धत्व की उपलब्धि के लिए दान शील नष्कर्म प्रज्ञा धीर्य शान्ति सत्य अविष्टान [हृत् निश्चय] मत्री उपेक्षा [सुख दुःख में समस्थिति] दस पारमिताएँ [पाली रूप पारमी] अपनाया आवश्यक माना है।^२ दस पारमितायाँ और बीसस्थानों में भी अत्यधिक समानता है। तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्रमण संस्कृति की दोनों ही धाराओं में तीक्ष्ण और बुद्ध बनने के लिए पूर्वजन्मों में ही आत्म मन्थन चित्तश्रमण गुणों का उत्कीर्ण तथा गुणों का धारण करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य माना है।

बुद्धनाम मुनि ने भी विशुद्ध परिणाम से श्वेताम्बर ग्रन्थानुसार

स वयावृत्त्यभातेने शतस्त्रैश्वामपाविपु ।
 जनात्मतरको नृणां तपसो हृदय हि तप ॥
 स तेने भक्तिमहंस्तु पूजामहंस्तु निश्चलात् ।
 माचार्यान् प्रथमी भेजे मुनीनपि बहुव तान् ॥
 परा प्रवचने भक्ति भास्तोपपन्ने ततान् स ।
 न पादपति रागादीन् विजेतु सन्ततानस ॥
 भवपमवसोऽप्येष वसी स्वावश्यक वसी ।
 पठनेह ऐशकामादिसम्पत्समवुनयन् ॥
 माग प्रकाशयामास तपोब्रह्मादिदीपिती ।
 इषानोऽसी मुनीनेनो मन्त्राज्जना प्रबोधक ॥
 वात्सल्यमपि चक्र स मुनिधर्मवत्सल ।
 विनेयान् स्वापयन् वने विनप्रवचनामितान् ॥

—महापुराण स्कंध ६८ से ७७ पर्व ११ पृ० २३३-२४

(क) दर्शनविशुद्धिनिमित्तप्रवृत्ता शीलवर्जितविरतिवारोऽभीक्ष्ण
 पात्रोपयोगवशेण शान्तिवस्त्यायतपसी सङ्गसाधुसमाधि
 र्वावावृत्त्यकरमहदाचार्यवद्वृत्तप्रवचनभक्तिरावश्यकपरिहृ-
 त्तिमात्रमावना प्रवचन वस्तुमत्त्वमिति शीर्षदृश्यम् ।

—सत्त्वार्थ सूत्र अ ६ पृ २३

दीस रथानको की^{१५} और दिगम्बर सन्धानुसार सोलह भावनाओं^{१३} की श्रावना कर तीर्थङ्कर नाम शोध का अनुबन्धन किया। अन्त में मासिक गन्धेयनापूर्वक पादपोषणमस्यारा करसमाधिपूर्वक आयुष्य पूर्ण किया।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि वज्रनाभ के छेप चारों लघु प्राताओं में से बाहुगुनि मुनियों की वैयावृत्य करता और मुवाहू गुनि परिधान मुनियों को विद्वामणा दता—^{१४} अर्थात् थके हुए मुनियों के अथयवों का मर्दन आदि करके सेवा करता। दोनों की सेवा भक्ति को निहार कर गज्जनाभ अत्यधिक प्रसन्न हुए

१०६ गत्य गगगण यद्वरणागेण यीमाग फारखोहि तिरययस्त नियद्ध'।

—आवश्यक पूर्णि० पृ० १३४

(ग) यद्वरणागेण य विगुणपरिणामेण तिरययरागमोत्त कम्म उक्तं ति।

—आवश्यक हारिमन्नीयावृत्ति पृ० ११८

१३०. दत्तगुनि महाधर्मो मुनिदिवरयभावयन्।

तीर्थङ्गस्वरय गम्माप्ती कारणान्नेप पोडस॥

—महापुराण ७८।११।२३४

(ग) जगद्वर्षयण्णानि प्रेलोषयतोभणानि य।

कारणानि य जेमस्य भावयागाग पोडस॥

—पुराणसार ७।२।१२

१३१ (क) एत्थ वाहू सो तोसि वर्योस वेयावच्च करेति।

ओ मो गुवाहू, सो मयवन्ताण कित्तिक्कम्म करेति।

—आवश्यक पूर्णि पृ० १३३

(ग) एत्थ वाहू तोसि वेयावच्च करेति, जो सुवाहू सो साहूणो वेसामेदि।

—आवश्यक हारिमन्नीयावृत्ति पृ० २१८

(ग) एत्थ वाहू तोसि वर्योस च साहूणो वेयावच्च करेद, जो सुवाहू सो साहूणो विरसामेदि।

—आवश्यक मत्त० वृत्ति०

और उनकी प्रशंसा करते हुए बोले—तुमने सेवा और विश्रामणा के द्वारा अपने जीवन को सफल किया है ।^{१२}

ज्येष्ठ भ्राता के द्वारा अपने भग्न भ्राताओं की प्रशंसा सुनकर पीठ महापीठ मुनि के अन्तर्मानस में ये विचार जागृत हुए कि हम स्वाध्याय आदि में निरन्तर तन्मय रहते हैं पर खेद है कि हमारी कोई प्रशंसा नहीं करता जबकि ब्यावृत्त करने वालों की प्रशंसा होती है ।^{१३} इस ईर्ष्याबुद्धि की तीव्रता से मिथ्यात्व आया और उन्होंने

११२ एव ते करेति बह्वन्नामो भगव बभूवृहति—अहो सुतद धम्मवीचियफलं अ साधूणं भगवन्त्तु कौरवसि परित्तन्ता वा माहुणो वीसामिज्जन्ति एव पत्तसि ।

—आवश्यक पूर्णि पृ० १३६

(क) आवश्यक हरिभद्रोपावृत्ति प ११८ ।

(ग) एव ते करेति भगव बह्वन्नामो-अगुवृहद अहो सुतद धम्म सहलीक्य वीचिय अ साहुणं भगवन्त्तु कौरव परित्तन्तो वा साहुणो विस्सामेइ ।

—आवश्यक भग वृत्ति प १६ ११

(क) अहो ! भगवविमी वयावृत्त्यविश्रमणाकरो ।

इति माहुमुवाहु सो वसन्नामस्तथाऽस्तावीत् ॥

—विषयि १११८ ६

११३ एव पत्तसिज्जन्तेषु तेसु तेसि दोण्हमिज्जन्ताणं अपत्तिय भवति अग्गे सग्गमयन्ता न पत्तसिज्जाना ओ करेइ सो पत्तसिज्जइ ।

—आवश्यक पूर्णि पृ० १३३-१३४

(क) एव पत्तसि-जन्तेषु तेसु तेसि पच्छिमाणं दोण्हमि पेमिमहमीढाणं अपत्तिय भवद अग्गे सग्गमयन्ता न पत्तसिज्जानो ओ करेइ सो पत्तसिज्जइ सच्चो जोगभवहारोति ।

आवश्यक भग वृ प १६ ११

(ग) सो तु पीठ-महापीठो पम्विन्तयत्तामिति ।

उपहारकरो वो हि ॥ एवंइ प्रशंसते ॥

नो माध्यमनध्यामरतामनुपहारिणो ।

नो जी प्रशंसयन्ता वसन्तद्वन्द्वयो वन ॥

—विषयि १११८०७-८ ८

विरामणा देने से श्रीअथम के पुत्र बाहुबली हुए जो विशिष्ट बाहुबल के अधिपति थे।^{१४१}

पीठ और महापीठ भुनि के जीवों का ईर्ष्या करने से क्रमशः श्री अथमदेव की पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी के रूप में जन्म हुआ।^{१४२}

भगवान् श्री अथमदेव के विराट् व्यक्तित्व और कृतित्व की भाँकी धमसे सप्ल में प्रस्तुत है। यहाँ तो श्रीअथमदेव के पूर्वभवों का संक्षिप्त रेखा चित्र उपस्थित किया गया है जो पतनोत्थान का जीवित भाष्य है। धमरासस्कृति का यह उद्घोष रहा है कि जब आत्मा पर-परिणति से हृन्कर स्व-परिणति को अपनाता है तब शनैः शनैः कुछ कुछ निमल होना हुआ एक दिन परमात्मा बन जाता है। कम पाश से सदा-सदा के लिए मुक्त होने का नाम ही परमात्म भवस्था है।^{१४३}

इस प्रकार धमरा सस्कृति ने निजत्व में ही जिनस्य की पावन प्रतिष्ठा कर जन-जन के अन्तर्मनिस में आस्था और उत्साह का संचार किया। प्रसुप्त देवस्य को जगाकर आत्मा से परमात्मा भक्त से भगवान् और नर से नागबल बनने का पवित्र संदेश दिया।

१४१ विपटि १।२।५५६-५५८ ।

(ख) मुवाहुवा बाहुबल ।

—आवसक मज दृ १६२

(घ) मुवाहुवा श्रीमामभाए बाहुबल निजतिथ ।

—आवसक हारिमद्रीया वृत्ति १२ ॥

१४२ विपटि १।२।५५८ न ५५९ ।

(ख) पण्डिताह दोहि ताण मायाण इतिनामबोल वम्भविजित नि ।

—आवसक हारिमद्रीया वृत्ति १२

१४३ नर्म-वदा अनेज्जोव

नर्ममुत्तरतना जिन ।

गृहस्थ-जीवन



महापुरुषों का चेला

भारतवर्ष महापुरुषों का देश है, इस विषय में संसार का कोई भी देश या राष्ट्र भारतवर्ष की तुलना नहीं कर सकता। यह अस्तित्व की जन्मभूमि है, मन्तों की पुण्यभूमि है, वीरों की कर्मभूमि है, श्री विश्वारक्त की प्रचार-भूमि है। यहाँ अनेक नररत्न, समाज-रत्न एवं राष्ट्ररत्न पैदा हुए हैं, जिन्होंने मानव मन की सूखी धरणी पर मनुष्य की मरम मृत्ति प्रवाहित की। जन-जीवन में अभिनव जागृति का संचार किया। जन-मन में सत्य और तप की ज्योति जगाई। अपने पवित्र चरित्र के द्वारा और तप पूत वाणी के द्वारा, कर्णव्य मार्ग में जड़ने की अमर प्रेरणा दी।

युग-पुरुष

गगन-मण्डल में बिचरती हुई बिद्युत्तरंगों को पकड़ कर जैसे बेलार का तार उन बिद्युत्तरंगों को भाषित रूप देता है, अभ्यक्त वाणी को व्यक्त करता है, वैसे ही समाज में या राष्ट्र में जो विचार-धाराएँ चलती हैं, उन्हें प्रत्येक विचारक अनुभव तो करता है किन्तु अनुभूति की तीव्रता के अभाव में अभिव्यक्त नहीं कर सकता।

अनुभूति तीव्र होती है और अभिव्यक्ति भी तीव्र होती है। जनार्दन को अव्यक्त विचारधाराओं को बेतार के पथरित ही नहीं करता बल्कि उसे नूतन स्वरूप उनकी बिमल-चाणी में युग की समस्याओं का १। है। उसके कर्म में युग का कर्म क्रियाशील २। में युग का चिन्तन चमकता है। युग-पुरुष विविध ३। जन-जन के मन का

परिचयरेखा



- महापुरुषों का देश
- युग-पुरष
- भारतीय संस्कृति के आद्य निर्माता
- जन्म से पूर्व
- शासनव्यवस्था
- कुलकरी की संस्था
- दण्डनीति
- हाकारनीति
- माकारनीति
- धिक्कारनीति
- स्वप्न-दशम
- जन्म
- नाम
- भादिपुरुष
- वंश उत्पत्ति
- विवाह परम्परा
- विधवाविवाह नह्य
- भरत और बाहुवली का विवाह
- सप्तप्रथम राजा
- राज्यव्यवस्था का सुवर्णयुग
- साधसमस्या का समाधान
- कला का अध्ययन
- वर्ण-व्यवस्था

- साधना के पथ-पर
- दान
- महामिनिष्कमण
- विवेक के अभाव में
- साधक जीवन
- विशिष्ट साम
- अक्षय वृत्तीया
- अरिहन्त के पद पर
- सम्राट् भरत का विवेक
- माँ मरुवेवी की मुक्ति
- धर्म चक्रवर्ती
- उत्तराधिकारी
- आद्य परिभाषक मरीचि
- सुन्दरी का समय
- अठानवें आतामो की दीक्षा
- भरत और बाहुव
- सफलता नह्य मि दी १६२
- बाहुवली को केवल ह जो ६५
- धनासक्त भरत
- भरत से भारतवर्ष
- भरत को केवल ज्ञा
- भगवान् के संघ में
- निर्वाण

गृहस्थ-जीवन



महापुरुषों का देश

भारतवर्ष महापुरुषों का देश है, इस विषय में संसार का कोई भी देश या राष्ट्र भारतवर्ष की तुलना नहीं कर सकता। यह धवतारी की जन्मभूमि है, सन्तो की पुण्यभूमि है, बीरो की कर्मभूमि है, श्री विचारको की प्रचार-भूमि है। यहाँ अनेक नररत्न, समाज-रत्न एवं राष्ट्ररत्न पैदा हुए हैं, जिन्होंने मानव मन की सूखी धरणी पर स्नेह की सरस मरिचा प्रवाहित की। जन-जीवन में अमिनव जागृति का संचार किया। जन-मन में सयम और तप की ज्योति जगाई। अपने पवित्र चरित्र के द्वारा और तप पूत बाणी के द्वारा, कर्णव्य मार्ग में जूझने की ममर प्रेरणा दी।

युग-पुरुष

गगन-मण्डल में विचरती हुई विद्युत्तरंगों को एकत्र कर जैसे बेलार का तार उन विद्युत्तरंगों को भाषित रूप देता है, अभ्यक्त बाणी को व्यक्त करता है, वैसे ही समाज में या राष्ट्र में जो विचार-धाराएँ चलती हैं, उन्हें प्रत्येक विचारक अनुभव तो करता है किन्तु अनुभूति की तीव्रता के अभाव में अभिव्यक्त नहीं कर सकता। युग-पुरुष की अनुभूति तीव्र होती है और अभिव्यक्ति भी तीव्र होती है। वह जनता जनार्दन की अभ्यक्त विचारधाराओं को बेलार के तार की भाँति मुखरित ही नहीं करता बल्कि उसे नूतन स्वरूप प्रदान करता है। उनकी विमल-बाणी में युग की समस्याओं का समाधान निहित होता है। उसके कर्म में युग का कर्म क्रियाशील होता है और उसके चिन्तन में युग का चिन्तन धमकता है। युग-पुरुष अपने युग का सफल प्रतिनिधित्व करता है। जन-जन के मन का

साधिकार नेतृत्व करता है एवं वह युग की जनता को सही दिशा-दर्शन देता है। भूले भटके जीवन राहियों का पथप्रदर्शन करता है। अतः वह सयाज रूपी शरीर का सुख भी है और भस्तिष्क भी है।

भगवान् श्री ऋषभदेव ऐसे ही कुम्भपुरुष थे जिन्होंने अपने युग की मोली माली जनता को 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का पाठ पढ़ाया जनजीवन की सवा विचार नयी धारणी एवं भया कम प्रदान किया। भोगमाग से हटाकर कममाग प्रवृत्तिमार्ग और योगमाग पर लगाया। अमानाधिकार को हटाकर ज्ञान का विमल आलोक प्रज्ज्वलित किया। मानव-संस्कृति का नव निर्माण किया। यही कारण है कि अनन्त-अतीत की धूलि भी उनके जीवन की चमक एवं दमक को आच्छादित नहीं कर सकी।

भारतीय संस्कृति के आद्यनिर्माता

आज मानवसंस्कृति के आद्यनिर्माता महामानव भगवान् श्री ऋषभदेव को कौन नहीं जानता? वे वतमान अवसर्पिणी काल-चक्र में सबभयम तीर्थचक्र हुए हैं।^१ उन्होंने ही सबभयम पारिवारिक प्रथा समाजव्यवस्था शासनपद्धति समाजनीति और राजनीति की स्थापना की और मानवजाति को एक नया प्रकाश दिया जिसका उत्सव हमने पृथ्वी में किया जाएगा।

जन्म से पूर्व

भगवान् श्री ऋषभदेव ऐसे युग में इस अवनीतल पर भाये जब

१ (क) एतच्छ्रुत्वा उत्तरेण्यम वरुण कोसनिष् पद्मराया पद्मविष्टे
पद्मकेतवी पद्मविलम्बते, पद्मं धम्भवर वक्रकन्दो सुमुष्मन्विता

—अम्बुदीपप्रतापि

(ख) उत्तरे इ वा पद्मराया इ वा पद्मविलम्बते इ वा पद्मविष्टे
इ वा पद्मविलम्बते इ वा ।

—वस्यगुरु० पुष्पजिह्ववी भू १६४ पृ १७

आर्यावर्त के मानवीय जीवन में आमूलचूल परिवर्तन हो रहा था। जीवन का ढंग पूरी तरह पलट रहा था। निष्क्रिय-योगिक-काल समाप्त होकर कर्मयुग का प्रारम्भ होने जा रहा था। प्रतिपल, प्रतिक्षण मानव की आवश्यकताएँ तो बढ़ रही थी पर उस युग के जीवन निर्वाह के एक मात्र साधन कल्पवृक्षों की शक्ति क्षीण हो रही थी। साधनों की अल्पता से संघर्ष होने लगा, वाद-विवाद, लूट-खसोट और छीना-भपटी होने लगी। समृद्धि पैदा होने लगी। स्नेह, सरलता, सौम्यता, निस्पृहता प्रभृति सद्गुणों में परिस्थिति की विवशता से परिवर्तन आने लगा। अपराधी मनोभावना के बीज अफुरित होने लगे।

शासन व्यवस्था

विख्यात राजनैतिक विचारक टामस्पेन ने लिखा है, “मानव अपनी बुरी प्रवृत्तियों पर स्वयं नियन्त्रण नहीं रख सका इसलिए शासन का जन्म हुआ। शासन का कार्य है व्यक्ति की बुरी प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण रखना। अच्छी प्रवृत्ति फूल की लता है, फल का वृक्ष है, जिसे बुरी प्रवृत्ति की भाड़ियाँ घेरती हैं, पनपने नहीं देती। शासन का काम इन भाड़ियों को काटना है।”^२

प्रस्तुत सन्दर्भ के प्रकाश में हम जैन संस्कृति की दृष्टि से देखें तो भी शासन व्यवस्था का मूल अपराध और अव्यवस्था ही है। अपराध और अव्यवस्था पर नियन्त्रण पाने के हेतु सामूहिक जीवन जीने के लिए मानव विवश हुआ। मानव की अन्तः प्रकृति ने उसे प्रेरणा प्रदान की। उस सामूहिक व्यवस्था को ‘कुल’ कहा गया। कुलों का मुखिया जो प्रकृष्ट प्रतिभा सम्पन्न होता था वह ‘कुलकर’ कहलाने लगा। वह उन कुलों की व्यवस्था करता।^३

^२ ज्ञानादय, वर्ष १७ अक्टू २ अगस्त १९६५, सहचिन्तन,

(कन्हैयालाल मिश्र) पृ० १४४।

^३ म्यानाग सूत्रवृत्ति० सू० ७६७, पत्र २१८-१।

कुलकरों की सख्या

कुलकरों की सख्या के सम्बन्ध में विभिन्न मत है। स्थानाङ्ग^४ समवायाग^५ भगवती^६ आवश्यककूर्णि^७ आवश्यकनियुक्ति^८ तथा त्रिपटिशलाकापुरुषचरित्र^९ में सात कुलकरों के नाम उपलब्ध होते हैं। पञ्चमचरित्र^{१०} महापुराण^{११} और सिद्धान्त संग्रह^{१२} में चौदह के तथा

४ स्थानाङ्ग सूत्र वृत्ति सू ७६७ पत्र २१८-१।

५ समवायाग १५७।

(क) जन्मुद्गीय एव यते । सीव भारद्वाजे बाले इमीसे श्रीमप्यिणीए समाग
कर कुलवारा होत्वा ? योगमा । सत ।

—भगवती म० १ उद् १ सू १

६ आवश्यक कूर्णि पत्र १२१।

७ पञ्चमेत्यविमलबाह्वन् चक्षुम जस्य चतुश्चमित्रिचन्दे ।

ततो म पतेनष्टए मरदय केव नामी य ॥

—आवश्यक नि मत सू ना १५२ पृ १५४

८ त्रिपटि पर्व १ स २ स्तो १४२-२६।

९ पञ्चमचरित्र उद् ० १ स्तो ५-५५

(१) कुमति (२) प्रतिभति (३) सीमकुर (४) सीमधर

(५) सीमकर (६) सीमधर (७) विमलबाह्वन् (८) चक्षुध्यान्

(९) मरदय (१०) मनिचन्द्र (११) चराम (१२) प्रसेनजित्

(१३) मरदेव (१४) नामि ।

१ भाग्य प्रतिष्ठाति प्रोक्त द्वितीय सम्प्रतिर्षत ।

तृतीयः क्षमकुन्नाम्ना चतुर्थः श्रीमधुमनु ॥

सीमकुरस्यमो श्रीम पञ्चः सीमधुद्विचते ।

ततो विमलबाह्वन् चक्षुध्यान्तमो अतः ।

यद्यस्मात्प्रथमस्तस्मान् नामिचन्द्रोऽप्यनन्तर ॥

चन्द्रामोऽस्मात्परः श्रीमो मरदेवस्ततः परम् ।

प्रसेनजित्परः तस्मात् प्राभिराजचतुर्दश ॥

—महापुराण विमलेनाचार्य प्रथम भाग सुतोय पर्व

स्तो १२६-१३२ पृ ३३

११ सिद्धान्त संग्रह पृष्ठ १८

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति^{१२} में पन्द्रह के नाम मिलते हैं। सम्भवत अपेक्षा भेद से इस प्रकार हुआ हो।

कुलकरो को आदिपुराण में 'मनु' भी कहा है।^{१३} वैदिक साहित्य में कुलकरो के स्थान में 'मनु' शब्द ही व्यवहृत हुआ है। मनुस्मृति में स्थानाग की तरह सात मनुओं का उल्लेख है^{१४} तो अन्यत्र चौदह का भी।^{१५} श्लेष में चौदह या पन्द्रह कुलकरो को सात में अन्तर्निहित किया जा सकता है। चौदह या पन्द्रह कुलकरो का जहाँ उल्लेख है, उसमें प्रथम छ सवैया नये हैं और ग्यारहवें कुलकर चन्द्राभ का भी उल्लेख नहीं है। शेष सात वे ही हैं।

१२ तीसरे समाए पच्छिमेतिभाए पत्तिभोवमह-
भागापसेसे, एत्थण, इमे पणारम कुलगरा
ममुप्पज्जित्वा त जहा—सुमई, पडिस्सुई,
मीमकरे, सीमघरे, छेमकरे, छेमघरे,
विमलवाहणे, पक्खुम, जसम अमिषन्दे
चवामे, पमेणई, मरुदेवे, जानी उमभोत्ति ।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति पृ० १३२

१३ आदि पुराण ३।१५ ।

(ख) महापुराण ३।२२६। पृ० ६६ ।

१४ स्वायम्भुवस्यास्य भनो, पञ्चवत्या मनभोऽपरे ।

सृष्टवन्त प्रजा स्वा स्वा, महात्मानो महोवस ॥

स्वारोचिषश्चोत्तमश्च, तामसो रैवतस्तथा ।

वाक्षुपश्च महातेजा, विवस्वत्सुत एव च ॥

स्वायम्भुवाद्या सप्तैते, भगवो भूरितेजस ।

स्वै स्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्यापुश्चराचरम् ॥

—मनुस्मृति, अ० १। श्लो० ६१-६२-६३

१५ (१) स्वायम्भुव, (२) स्वारोचिष, (३) ओत्तमि, (४) तामस,
(५) रैवत, (६) वाक्षुप, (७) वैवस्वत, (८) सार्वभि, (९) दक्षसार्वभि,
(१०) प्रह्लासार्वभि, (११) धर्मसार्वभि, (१२) रुद्रसार्वभि,
(१३) रोज्य देव सार्वभि, (१४) इन्द्र सार्वभि ।

—भोव्योर-भोव्योर मिलिबम संस्कृत-द्विजविद्य विज्ञानरी पृ० ७८४

दण्डनीति

अपराधी मनोवृत्ति जब व्यवस्था का अतिक्रमण करने लगी तब अपराधी के निरोध के लिये कुलकरो ने सर्वप्रथम दण्डनीति^{१६} का प्रचलन किया। वह दण्डनीति हाकार माकार और धिक्कार थी।^{१७}

हाकार नीति

शान्त कुलकरा की दृष्टि से प्रथम कुलकर विमल बाहुन के समय हाकार^१ नीति का प्रचलन हुआ। उस युग का मानव भाज के मानव की तरह समर्थादित न उन्मुख नहा था। वह स्वभाव से ही सहोषी और तज्जाशील था। अपराध करने पर अपराधी को इतना ही कहा जाता — हा 'अर्थात्' तुमने यह क्या किया?' यह शब्द प्रताड़ना उस युग का महात् दण्ड था। अपराधी पानी-पानी हो जाता।^{१८} प्रस्तुत नीति तृतीय कुलकर 'अक्षय्याव' के समय तक सफलता के साथ चली।

माकार नीति

जब हाकार नीति विफल हुई तब माकार नीति का प्रयोग प्रारम्भ हुआ।^२ तृतीय और चतुर्थ कुलकर 'अक्षय्यी' और

१६ दण्ड अपराधिनमनुशासनं तत्र तस्य वा स एव वा नीतिः नया दण्डनीतिः ।

—स्थानाङ्ग वृत्ति ५ १६९-१

१७ हुकारे अकारे धिक्कारे चैव दण्डनीतौभौ ।

वी० द० शांति विसेसं जहन्म बाहुपुत्रो॥

—आव नि गा १६४

१८ ह इत्यग्निपार्श्वतस्तस्य करणं हुकारः ।

—स्थानाङ्ग सू० वृत्ति ५ १६६

१९ तेषु भगुवा हुकारेण ददेण ह्या समाया तज्जा विज्जा विज्जिज्जा के० भोमा सुविभीया विज्जोमया विट्ठुत्ति ।

—अधु नामाधिकार ४ ७९

२० मा इत्यस्य निगार्थस्य करणं अमियान माकारः ।

—स्थानाङ्ग वृत्ति ५ १६६

“अभिचेन्द्र” के समय तक लघु अपराध के लिए “हाकार नीति” और गुस्तर अपराध के लिए “माकार नीति” प्रचलित रही। “मत करो” यह निषेधाज्ञा महान् दण्ड समझी जाने लगी।

घिवकारनीति

मगर जन साधारण की घृष्टता क्रमशः बढ़ती जा रही थी, अतः माकारनीति के भी असफल हो जाने पर “घिवकारनीति” का प्रादुर्भाव हुआ।^{११} और यह नीति पाँचवें प्रसेनजित्, छठे भरुदेव तथा सातवें कुलकर नाभि तक चलती रही। इस प्रकार खेद, निषेध और तिरस्कार मृत्पुदण्ड में भी अधिक प्रभावशाली थे। क्योंकि उस समय का मानव स्वभाव से सरल और मानस से कोमल था।^{१२} उस समय तक अपराधवृत्ति का विशेष विकास नहीं हुआ था।

स्वप्न-दर्शन

अन्तिम कुलकर नाभि के समय यौगलिक सभ्यता क्षीण होने लगी, और एक नयी सभ्यता मुस्कुराने लगी। उस सन्धिबेला में श्री ऋषभदेव सार्थार्थविमान से च्यवकर माता भरुदेवी की कृषि में आये। उनके पिता नाभि थे।^{१३}

२१ विगधिकेपार्थ एष तत्स्य करण उज्ज्वारण चिक्कार ।

—स्थानाव वृत्ति पृ० १६६

२२ तेण मयुक्ता पणईउवसन्ता, पणई पयणुकोह-माण—पाया—लोहा, मिठ—मद्वसम्पणा, अस्तीणा, भद्गा, विणीया, अप्पिच्छा, असणिहिसन्ना, विडिमन्तरपरिवसणा जहिच्छिन्न कामकामिणो ।

—जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति चक्रस्कार सू० १४

२३ नाभिस्स कुलगरस्स भरुदेवीए भारियाए ।

—कल्पसूत्र पुण्य० सू० १६१ पृ० ५६

(क) त्रिपष्ठि पर्व १, सय २, स्तो० ६४७ से ६५३ ।

(ग) नाभिस्त्वजनयत्युत्र, भरुदेव्या महावृत्ति ।

ऋषभ पाण्डित्येष्ट, सर्वज्ञास्य पूर्वजम् ॥

—वायुमहापुराण पूर्वार्ध ५ अ० ३३

जब बालक गम में आता है तब गम का माता के मानस पर और माता के मानस का गम पर प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि किसी विशिष्ट पुरुष के गम में आने पर उसकी माता कोई थप स्वप्न देखती है। भारतीय साहित्य में स्वप्न विज्ञान के सम्बन्ध में विस्तार से निरूपण मिलता है। यथादिपुरुषोत्तम श्रीराम के गम में आने पर माता कौसल्या ने चार स्वप्न देखे थे।^{१३} कर्मयोगी श्रीकृष्ण के गम में आने पर देवकी ने सान स्वप्न देखे थे।^{१४} महात्मा बुद्ध के

(घ) नामिस्त्वज्जनयन् वन मन्वेद्या महास्रति ॥१६॥

रूपम धारिव श्रुत्वा श्रवणस्य पुत्रवत् ।

रूपमाद् भरती जने कीर पत्रघटाग्रव ॥

— ब्रह्माण्ड पुराण पुरुषार्थ अनुपङ्गपाद स्तो० १६-१ अध्याय १४

(ङ) नामिमन्वेद्या पुत्रमजनयन् रूपमनामान ।

— वाराह पुराण अध्याय ७४

(च) नाम पुत्रवत् रूपम ।

— स्क० ४ पुराण भा० स्वरत्न-कीमारत्न

स्तो १७ अध्याय १७

(छ) हिमास्त्रिय तु वप्न नाभेरसी महात्मन ।

तस्यपमोऽभवत्पुत्रो भिरहेद्या महास्रति ॥

— कूर्मपुराण स्तो १७ अध्याय ४१

१४ (क) भतुरो बलदेवाम्बाव ।

— श्री कामलोक्तकाश सप्त १ श्लोक १६ पृ १६६

(ख) दहन मुसमुप्या च नामिन्या पश्चिम क्षणे ।

भतुर सा महास्वप्नान् सुषमान् वसन्तमव ॥

— त्रिपटि पर्व ४। सप्त १ श्लो १६८

(ग) तेनप्रजन पृ १७६ ।

(घ) जैन रामायण मेघराज पौ १६ वा दान व दाह ।

१५ यामिन्या पश्चिमे गये सुषमा विष्णुजन्म ।

देव्या दहन्तिरे स्वप्ना मर्त्ये सुसमुपया ॥

— त्रिपटि ४। १। १७७

(ङ) सत्यम्न पृ १७६ ।

जब बालक गम में आता है तब गम का माता के मानस पर, और माता के मानस का गम पर प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि किसी विशिष्ट पुरुष के गम से आने पर उसकी माता कोई थप स्वप्न देखती है। भारतीय साहित्य में स्वप्न विज्ञान के सम्बन्ध में विस्तार से निरूपण मिलता है। मयादापुरपोतम श्रीराम के गम से आने पर माता कौत्स्या ने चार स्वप्न देखे थे।^{१२५} कर्मयोगी श्रीकृष्ण के गम में आने पर देवकी ने सात स्वप्न देखे थे।^{१२६} महात्मा बुद्ध के

(ध) नामिस्त्वचमस्य पत्र मस्तेष्वामा महाघ तिम्र ॥३६॥

ऋषभ पाषिष थ १७ सवसात्रस्य पुत्रमस्य ।

ऋषभाद् भरतो जने वीर पत्रसतामस्य ॥

—ब्रह्माण्ड पुराण पूर्वाह्न अनुपङ्गपाद स्तो ३२-६ अध्याय १४

(इ) नामिमस्तेष्वामा पुत्रमजनयत् ऋषयनामान ।

—शारङ्ग पुराण अध्याय ७४

(ए) नामि पुत्रस्य ऋषभ ।

—स्वप्न पुराण बाह्वरकखण्ड-कीमारखण्ड

स्तो १७ अध्याय ३७

(अ) हिमाङ्गम तु वदप नामेरासी महात्मन ।

तस्यर्षभोऽभवत्पुत्री वैश्वेभ्या महाघ त्रि ॥

—कूर्मपुराण स्तो ३७ अध्याय ४१

२४ (क) चतुरो जलदेवाम्नाथ ।

—श्री कामसौक्यकाण्ड सर्ग ३ श्लोक ३६ पृ १६६

(ख) वसन्त सुखसुप्ता च मामिन्ध्या पश्चिम जगते ।

चतुरा स्य महास्वप्नान् सुखान् वलज-मन ॥

—निघण्टि० पर्व ४ । सर्ग १ स्तो २६५

(ग) सेनप्रज्ञ पृ ३७६ ।

(घ) जैन रामचन्द्र केसरखण्डो १६ श्री दाल क दोहे ।

२५ मामिन्ध्या पश्चिमे नामे सुषका विष्णुजन्मन ।

देव्या वदन्तिरे स्वप्ना सप्तंति सुखसुप्ताया ॥

—निघण्टि ४।१।२१७

(ङ) सेनप्रज्ञ पृ ३७६ ।

गर्भ में आने पर उनकी माता मायादेवी ने एक पङ्कदन्त गज का स्वप्न देखा था ।^{२६} उसी प्रकार श्री ऋषभदेव के गर्भ में आने पर माता मरुदेवी ने भी (१) गज, (२) वृषभ, (३) सिंह, (४) लक्ष्मी, (५) पुष्प-माला, (६) चन्द्र, (७) सूर्य (८) ध्वजा, (९) कुम्भ, (१०) पद्मसरोवर, (११) क्षीर-समुद्र, (१२) विमान, (१३) रत्नराशि, (१४) निघ्नं अग्नि ये चौदह महास्वप्न देखे ।^{२७} दिगम्बराचार्य जिनसेन ने सोलह स्वप्न देखने का उल्लेख किया है ।^{२८} उपर्युक्त चौदह स्वप्नों में से ध्वजा को

- २६ (क) बुद्धचर्या, राहुल साकृत्यायन पृ० २, प्रथम सस्क०
(ख) ललित विस्तर, गर्भावकान्ति परिवर्तन ।

- २७ गय वसह सीह अभिनेय, वाम सति विषयर भय
पडममर भागर विमाण-भवण रयणुच्चय सिहि
—कल्पसूत्र प०

- २८ सापक्षत् पोटप्रस्वप्नान्, इमान् शुभफलोदयात् ।
मिषाया पश्चिमे धामे, जिनजन्मानुगमिन ॥१०३
गणेशमैन्द्रमामन्त्रवृ हित विमदवतुम् ।
धनन्तामिषसाधार, सा ददर्श वरद्वनम् ॥१०४
गवैन्द्र दुन्दुभिष्कण्ठ, कृमुदापाण्डुरद्युतिम् ।
पौन्यपराशिनीकाश, सापक्षत् मन्दवि स्वनम् ॥१०५
मृगेन्द्रमिन्दुवध्वायकपुष रक्तकण्ठरम् ।
अयोत्सवा सन्ध्यया चैव, घटिताङ्गमिवैतत् ॥१०६
पद्मा पद्ममयोनुङ्गविष्टरे सुरवारणी ।
स्न्या हिरण्यं कुम्भं यवर्णत् स्वामिष ध्वजम् ॥१०७
वामनी कुसुमामोक्ष, समालम्भमदालिनी ।
सज्जङ्गुतैरिवारव्यमाने सानन्दमैखत ॥१०८
समग्रविम्बयुज्योत्सव, तारावीक्ष सत्तारकम् ।
स्मेर स्वमिष वक्त्राब्ज, समीक्षितमलोक्यत् ॥१०९
विधूतध्वान्तमुखन्त, भास्वन्तधुष्याचक्षात् ।
शातकुम्भमय कुम्भ मिवाद्रालीत् स्वमङ्गले ॥११०
कुम्भौ हिरण्यौ पक्षपिहितास्वौ अलोक्यत् ।
स्तनकुम्भाविवालीयौ, समासस्तकराम्बुजौ ॥१११

उन्होंने स्थान नहीं दिया है। शेष तेरह स्वप्न वे ही हैं। उनके प्रतिरिक्त (१) मत्स्ययुगल (२) सिंहासन (३) नागेन्द्र का भवन—ये तीन स्वप्न अधिक है। श्वेताम्बरमान्यतानुसार नरक से भाने वाले तीर्थङ्करो की माता स्वप्न में भवन देखती है और स्वर्ग से भाने वालों की माता विमान।^१ उन्होंने विमान और भवन के स्वप्न को वकल्पिक माना है।

कवी तरसि सम्पुष्पकृमुदोत्पत्तपङ्कजे ।
 सापस्वस्वयनायाम दशायन्ताविवातम् ॥११२॥
 तरस्तरोजकिम्बल्कपिम्बरोक्षकर्मसात ।
 मुषर्णश्चसम्पूर्णविष विष्य सरोवरम् ॥११३॥
 सभ्यस्यमभिषुङ्ग्य च यत्तत्कल्पोसकाह्वयम् ।
 सावशास्त्रीकरमौक्त्यम् अट्टहासमिवोद्यतम् ॥११४॥
 सहसासनमुत्तुङ्ग स्फुरन्मणिहिरण्यवम् ।
 सापश्यमेकमुक्लस्य यद्यन्वी यद्यभुजिताम् ॥११५॥
 नाकालम् व्यसोकिष्ठ धराध्यमनिवासुरम् ।
 स्वसुगौ प्रसन्नानारम्भ देवस्माहृतम् ॥११६॥
 कवीप्रभवन मृगिम्, उन्निबोद्यतमसात ।
 प्राण्ण्टस्वर्चिमानेन स्पर्द्धा कर्तुमिवोद्यतम् ॥११७॥
 रत्नाना राशिमुत्सर्पकपुस्तनिताम्बरम् ।
 सा निवर्ष्मी धरादेया निषालनिव रक्षितम् ॥११८॥
 ज्वलन्मूर्तुरनिर्भूतमधुष विषगार्पितम् ।
 प्रतापमिव पुनस्य मूर्तिस्थ भवनावत ॥११९॥
 व्यशामयन् च तुङ्गाङ्ग पुङ्गव सम्पसञ्चविम् ।
 प्रविशन्त स्वन्नमाम्ब स्वप्नान्ते पीनकन्धारम् ॥१२॥

—महापुराण विनयेनाचार्य पृ १५ स्तो १०१ से १५

पृ २५६-२६

२६ देवलोकाद्योन्मत्तरति तमाता विमान पश्यति यस्तु नरकात् तन्माता भवनमिति ।

—भगवती कण्ठ ११ उद् ११ अथमदेववृत्ति

जन्म

भगवान् श्री ऋषभदेव का जन्म जम्बूद्वीपप्रज्जप्ति, कल्पसूत्र, श्रावण्यकनिर्घुक्ति, श्रावण्यकूर्चगि, त्रिपट्टिशानाकापुरुषचरित्र, प्रभृति ध्वेताम्बरप्रधानुसार चैत्र कृष्ण अष्टमी को दुया^{३०} और दिगम्बरार्च्य जिनमेन के अनुमार नवमी^{३१} को । समव है अष्टमी की मध्यर्गात्र होने से ध्वेताम्बर परम्परा ने अष्टमी निम्वा हो और प्रातःकाल जन्म मानने से दिगम्बर परम्परा ने नवमी निम्वा हो । इम

१० उगमे अग्रा कोमदिग त्रे मे विष्ठासु पठमे माग परमे परमे चित्तवहने तम्भसु चित्तवह्मम् अट्टमीपर्वसु नक्षत्र मामासु बहुपटिपुष्पासु अट्टमीपर्व य गट्टिन्दियाग जात अग्रासु नक्षत्रस्य खोगभुवागगा अग्रेणा अग्रेण पथाया ।

—कल्पसूत्र, पृष्ठ ० सू० १६३ पृ०

(१) उगममट्टमीप जात उगमे अग्रासु नक्षत्रे ।

—आश्विन्य निर्घुक्ति गा० १८८

(२) अग्रासु नक्षत्रे उगममट्टमीप जात अग्रेणा अग्रेण पथाया ।

—आश्विन्य निर्घुक्ति, विनयममहत्त पृ० १५५

(३) त्रिपट्टि० गा० २, पथ १ स्तो० पृ० २६५ ।

(४) कल्पसूत्र—समय मुद्र पृ० १६७ ।

(५) कल्पसूत्र कर्त्तव्य—सप्तमीवर्त्मन पृ० १४२ ।

(६) कल्पसूत्र कल्पार्थसोपिनी, केदारसूत्री पृ० १४८ ।

(७) कल्पसूत्र, कल्पसूत्रोपिका, पृ० ८८५ ।

११ अयाती नवमागानाम्, अत्यये सुपुत्रे रिभुम् ।

देवी देवीमिच्छतामि, यथास्य परिवारिता ॥

प्राचीय रुद्रमुखाणां, ना मेमे मास्वर मुत्तम् ।

यत्रे पारयसिद्धे पत्नी, नवमागमुदये रवे ॥

विद्ये श्लाघामहायाम्, जगतामेवमन्तमम् ।

भागवान् विभिर्बाधि रिभुमप्यसिद्धिं गुणी ॥

—महापुराण जिनसेन स० १३, स्तो० १-३ पृ० २८३

भेद का प्रमुख कारण हमारी दृष्टि से उदय और अस्त तिमि की पृथक्-पृथक् मान्यता हो सकती है।

नाम

मा मरुदेवी ने जो चौदह महास्वप्न देखे थे। उनमें सब प्रथम कृपम का स्वप्न था^{३२} और जन्म के पञ्चान् भी शिशु के उरु-स्थल पर कृपम का लाक्षण था अतः उनका नाम कृपम रखा गया।^{३३} भागवत्

॥२ (क) सा उत्सहगमसीहमाईए चोदस सुमिखे पासिता पन्निबुडा।

—आवश्यक नि० मत कृति प० १६३।१

(ख) नवर पन्म उमम मुडे अतित पासति सेसार मय।

—कपसून पुण्य सू १६२ प ५९

(ग) स्वर्गावतरणे दृष्टं म्वजेऽप्य कृपमो मत।

जन्मया तन्म देव जाहूतो कृपमास्मया ॥

—महापुराण विनतम चतुर्विंश पर्व ११० १६२

(घ) निपण्ठि १।२।२१३। प ४।१ पृ ३१६

११ (क) तत्र मनकतो नाम विबन्धन चतुर्विंशतिस्तत्र मरुति उम्मुत्समसन्नमसुसम सुमिश्रमि तेव उत्समजिणो।

—आवश्यक मत कृ पृ १६२।१

(ख) अस्तु उत्समसन्नम उत्समो सुमिश्रमि तेव कारणेण उत्समोति नाम कम्।

—आवश्यक कृति विनतम पृ १६१

(ग) उत्समदेवे कृपमो लाञ्छन मञ्जयत्यते।

श्रुपम प्रथम वच स्वप्ने भाषा निरीक्षित ॥

उत्सम श्रुपम इति नामोत्समपुर. चरम्।

तो भाषापित्तरी हृष्टो विदधाते शुभे दिने ॥

—निपण्ठि १।२।१४८-१४९। प ५४

(घ) पूर्ण स्वप्नसमये कृपमस्व दर्शनात् पुनस्पोनवोर्जह्मो रोम्प्याम् आवर्तममपावलोकाद् कृपमस्याकारस्यसञ्चलाद् नाभिकुलकरेण श्रुपम इतिनाम दत्तम्।

—कल्पसूत्र ध्या ७ पृ १४२ कल्पद्रुम मकलिका

(ङ) कल्पसूत्र कल्पार्चवोचिनी पृ १४४।

में यही नाम आया है। उनके नाम के साथ नाच और देव शब्द कब जुड़े यह कहना कठिन है तथापि यह स्पष्ट है कि ये शब्द उनके प्रति भक्ति और श्रद्धा के सूचक हैं।

त्रिगम्बरपरम्परा में ऋषभदेव के स्थान पर वृषभदेव भी प्रसिद्ध है। वृषभदेव जगन् भर में ज्येष्ठ है और जगन् का हित करने वाले धर्मरूपी अमृत की वर्षा करेगे एतदर्थ ही इंद्र ने उनका नाम वृषभदेव रखा।^{४८} वृष कहते हैं श्रेष्ठ को। भगवान् श्रेष्ठ धर्म से शोभायमान हैं। इसलिए भी इंद्र ने उन्हें वृषभ स्वामी का नाम प्रदत्त किया।^{४९}

श्री ऋषभदेव धर्म और धर्म के आदर्शनिर्माता थे एतदर्थ जन इतिहासकारों ने उनका एक नाम आग्निनाथ भी लिखा है और यह नाम अधिक जन मन प्रिय भी रहा है।

श्री ऋषभदेव प्रजा के पासक थे एतदर्थ आचार्य जिनमेन ' न आचार्य समन्तभद्र न उनका एक गुण निरूपित नाम

४९ वृषभोऽयं जनज्येष्ठः कर्षिष्यति जनहितम् ।

धर्माभूतमितीन्द्रास्तम् अर्वाभुर्वृषभाक्षयम् ॥

—महापुराण विष्णुसंहिता पर्व १४ श्लो १६ प ११६

४९ वृषो हि मन्त्रात्मकः तेन यज्ज्ञाति तीक्ष्णम् ।

ततोऽयं वृषभस्वामीत्याह्वास्तीर्णं पुरन्दरम् ॥

—महापुराण विष्णुसंहिता पर्व १४ श्लो १६१ प ११६

४४ आपादभासवद्गुणप्रतिपत्तिरिति इती ।

कृत्वा इत्युच्चार्य आत्मापममुपेवितान् ॥

—महापुराण १६।१६१।३६३

४५ प्रजापतिर्वै प्रथमं विज्ञानिषु

सशास कृष्यादिषु धर्मसु प्रजा ।

प्रबुद्धतत्त्वं पुनरुद्गुणोद्गमो

ममत्त्वतो निर्विनिर्गुणो विदाम्बरम् ॥

—बृहत्संहिता ११।१११।३६३

रूप में अवतार ग्रहण किया। प्रभाम पुराण में भी ऐसा ही उल्लेख है।^१

डाक्टर राजकुमार जन ने ऋषभदेव तथा शिव सम्बन्धी प्राच्य मान्यताएँ गीणक लक्ष्मण वद उपनिषद् भागवत प्रभृति ग्रन्थों के अतिरिक्त प्रमाण देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ऋषभदेव और शिव एक ही हैं पृथक्-पृथक् नहीं। अतएव और ब्राह्मण दोनों परम्पराओं के बीच आदि पुरण है।

वक्ता-उत्पत्ति

जब ऋषभदेव एक क्षण से कुछ कम के व उस समय वे पिता की गोद में बैठ हुए क्रीडा कर रहे थे। एक नर हाथ में शृगु लेकर आया।^२ ऋषभदेव ने उसे लम्बे के लिए हाथ आगे बढ़ाया। बालक का दृष्टु के प्रति आकर्षण देखकर शृगु ने इस वक्ता को इक्ष्वाकु वक्ता नाम से

- ५ इत्यप्रभाव ऋषभोऽथनार गवरस्य य ।
सता यतिर्दीनवपुनवम कथितस्तथ ॥
ऋषभस्य वरिण नि परम पावम मह्य ।
स्वर्ग्य वक्तास्यमानुष्य ध्यातव्य च प्रयत्न ॥

—शिवपुराण ४।४७-४८

- ५१ कलाभे विमले रम्य ऋषभोऽय विनेस्वर ।
चक्रार स्वावतार च सर्वेण सर्वेण शिव ॥

—प्रभासपुराण ४१

- ५२ मुनि श्री हजारीमम स्मृति बन्ध पृ ६१ ।

- ५३ (क) देवुक्तव च वरिस सन्कायमण च वसठवका य ।

—आमस्य नि वा १८१ मत च पृ ११२

- (ख) शतो य शामिकुलकरा उममनामिना धरुवरगतेण एव च
विहरति सत्ता य मह्यमाणाओ इक्षुलक्ष्मीया गहाय
उवगलो चयावई ।

—आवश्यक धूणि पृ ११२

अभिहित किया । आचार्यों ने व्युत्पत्ति करते हुए कहा है—इक्षु + प्राकु (भक्षणार्थे) डधवाकु ।”

विवाह परम्परा

सामाजिक रीतिरिवाज, जिसमें विवाहप्रथा भी सम्मिलित है, कोई शाश्वत सिद्धान्त नहीं, किन्तु उन में युग के अनुसार परिवर्तन होता रहता है । भाई-बहिन का विवाह इस युग में बड़े से बड़ा पाप माना जाता है, किन्तु उस युग में यह एक सामान्य प्रथा थी । यौगलिक परम्परा में भाई और भगिनी ही पति और पत्नी के रूप में परिवर्तित हो जाया करते थे । सुनन्दा के भ्राता की अकाल में मृत्यु हो जाने से”

४४ (क) मक्को वन्द्यवगे इयम्बु मगू सेण वृत्ति इत्थाया ।

—आवश्यक नियुक्ति गा० १८६ ।

(ख) भगवता लट्ठीमु दिट्ठी पाडिता, ताह सक्केण भणिय—कि भगव । इवसुमकु । अफु भवसग्गे, ताहे सत्तामणा पमत्ता लयदणवरौ जगत्तिविभूमिता दाहिणहृदा पमारिता, भतीव तम्भि हात्मा जातो भगवन्तग्ग, तएण मक्कस्स दाघदस्स भयमेयाहवे अज्जमरियते—अम्हा गव तित्थग्गे इक्खु अभिलसति तम्हा इत्तागुवमा भवतु, एव सवभा वस ठवेऊण गतो, अन्नऽपि त कास खत्तिमा इम्बु भुज्जन्ति तेण इक्कागवसा जाता इति उबार आहारद्वारे निहतमि “जासी य इत्थुभोती इयमाया तेण जत्तिया होति” अभिही ।

—आवश्यक चर्चि, पृ० १४२

(ग) मियण्ठि सत्ताका० १।२।६५४ त ६५६ ।

(घ) कल्पसूत्र सुवोविका टीका पृ० ४८७ ।

(ङ) कल्पसूत्र, कल्पलता, समथसुन्दर जी, पृ० १६८ ।

(च) “ कल्पार्थवोचिनीवृत्ति० केयर० पृ० १४४ ।

(छ) “ कल्पद्रुमकसिका पृ० १४३ ।

(ज) “ मणिसागर पृ० २६६

४५ पदमो अकालमन्नु ताह, तालफलेण धारको उ हता ।

कता य कुलगेरेह य, सिट्ठे गहिया उसमपत्ती ॥

—आव० नि० गा० १६०, म० पृ० १६३

ऋषभदेव न सुनन्दा व सहजान् सुमङ्गला के साथ पाणिग्रहण कर नई व्यवस्था का सूत्रपात किया।^{१०} सुमङ्गला न भरत और बाह्यी का और सुनन्दा ने बाहुवली और सुन्दरी का जन्म दिया। इस प्रकार सुमङ्गला के ऋषभ अट्ठानव पुत्र और हुए। दिगम्बर परम्परा निम्नानव पुत्र मानती है।

५९ (क) भोत्समत्वं नातु नरवर्यं तत्सु कसि दक्षिणे ।

दोः नरमहिषाणु बहूकम् कसि दधीता ॥

—आम नि मा १२१ प १२१

(ख) विपाठ १।२।८८१ ।

६० ऐषी सुमङ्गला न भग्नी व मिथुनक नाय ।

ऐषी न मुन्याए बाहुवली सुन्दरी चैव ॥

—भावश्यक सूत्रभाष्य

(ग) क्षणु बसवसहस्रा पुत्रि आयस्य जिनवारवस्य ।

ता नरह्वमिषु हरि बाहुवली चैव जामाह ॥

—आम नि मा १२२ म वृ १२४।२

(घ) भावश्यक वृत्ति पृ १२३ ।

(च) सुनन्दा सुन्दरी पुत्री पुत्र बाहुवलीसिन्धु ।

लक्ष्मी रवि परा भव प्राणीवाक्कं सह स्थिता ॥

—महा १९।८। ४९

(ङ) तथा बाहुवीयो भरत वीठवीयो बाह्यी इति सुमङ्गलाया मिथुनक जात । एव सुबाहुवीयो बाहुवली महावीठवीय सुन्दरी इति मिथुनक मुन्याया जात ।

—कल्पसता—समय सुन्दर

(ज) कल्प कल्पार्णवोधिनी पृ १४४-१४५ ।

(झ) कल्पक म कलिका ज्योती पृ १४३ ।

६१ अठनापन्न पुत्रसे

पुत्राण सुमङ्गला पुत्रो पञ्च ।

—आम नि मा १२३ मल वृ १२४।२

(ञ) भावश्यक वृत्ति पृ १२३ ।

(ट) एव पुनरपि सुमङ्गलाया एकोनपञ्च सप्त पुत्रताति पुत्ररूपाणि जातानि ।

—कल्पसता—समय सुन्दर

६२ इत्यकाप्रदत्त पुत्रा वधूवृषवेष्टिनः ।

भरतम्यानुजमाना परमाङ्गा मनीषम ॥

विधवा विवाह नहीं

कितने ही आधुनिक विचारक कल्पना के यमन में विहरण करते हुए 'मुनन्दा' को विधवा मानकर श्री ऋषभदेव के उसके साथ किए गए विवाह को विधवा विवाह कहते हैं। उन विचारकों को यह स्मरण रखना चाहिए कि आचार्य भद्रबाहु,^{१०} आचार्य जिनदासगणि महत्तर,^{११} आचार्य भल्लगिरि,^{१२} आचार्य हेमचन्द्र,^{१३} श्री समय

ततो ब्राह्मी धनस्वत्या, श्रद्धा समुद्रपादयन् ।

कलामिवापराणाया, ज्योत्स्नपक्षोऽमला विधो ॥

—महापुराण जिन० १६।४-५ पृ० ३४६

१० आवश्यक नियुक्ति, आचार्य भद्रबाहु या० १६० ।

११ ततो य तलस्वत्याओ तलफल पक्ष समाश्रयतेषां जातु तस्मै दारगत्स उवरि पठित तेषां अकाले चैव जीवितात् अवरोधितो ।

—आवश्यक कृषि, जिनदास महत्तर पृ० १४२

६२ भगवतो देशोन्नयनकाल एव किञ्चिन्मिथुनक सञ्जातापत्य सत् तदपत्यमिथुनक तालवृक्षस्याङ्गो विमुच्य रिरसया कदलीगृहादि क्रीडा गृहमगमत्, तस्माच्च तालवृक्षात् पवनप्रेरित पक्ष तालफलमपतत्, तेषां दारकाऽकाश एव जीविताद् व्यपरोपित ।

—आवश्यक मल० कृति० पृ० १६३

६३ अन्येषु क्रीडया क्रीडद् वालभानामुरूपया ।

मियो मिथुनक किञ्चित्, तले तालतरोरगात् ॥

तदैव देवदुयागात्, सन्मध्यान्नरमूर्द्धनि ।

तडिदृष्टे इवैरण्डेऽपतत् तालफल महत् ॥

प्रहत कान्तसालीयन्यायेन स तु मूर्द्धनि ।

विपन्ना दारकस्तत्र, प्रणयेनाऽप्रमृष्टा ॥

—त्रिपठि १।२।७३५ से ७३७

सुन्दर १४ ७ पाध्याय विनय विजय १५ केशरमुनि १६ श्री लक्ष्मीवल्लभ १७ श्री मणिसागर १ प्रभृति विज्ञाने प्रस्तुत घटना का उद्घटन करते हुए उम युगल को बालक और बालिका बताया है न कि युवा-युवती । और जब वे बालक बतों उनका पारस्परिक सम्बन्ध भी भ्रातृ भगिनी रूप में ही था पति-पत्नी के रूप में नहीं अतः स्पष्ट है कि श्री ऋषभदेव ने मुनन्दा के साथ विवाह किया वह विधवा विवाह नही था । जब उनका पति-पत्नीरूप सम्बन्ध ही नहीं हुआ तो वह विधवा कैसे कही जा सकती है ?

आचार्य जिनसन न महापुराण में प्रस्तुत घटना का उल्लेख नहीं किया है और न ऋषभसंहजान भुमगना में ही पाणिग्रहण करवाया है । श्री ऋषभ की अनुमति लेकर नामि न ऋषभ न विवाह हेतु वा सुयोग्य सुनील वन्याओं की याचना की । १ फनस्वस्वप कच्छ महाकच्छ की दो यहिन जा सुन्दर और यौवनवता था जिनका नाम वास्वी और मुन्दा था उनके साथ नामि न ऋषभ का विवाह किया । भागवत के अनुसार गृहस्थ धर्म की शिक्षा देने के लिए देवराज इंद्र की दी हुई ७०वीं वन्या ~~जयन्ती से ऋषभदेव न विवाह~~

१४ कल्पसूत्र कल्पलता व्या ७ समयमुन्दर प १६८ ।

१५ कल्पसुबोधिका विनय प ४८७ सारा न ।

१६ कल्पसूत्र कल्पार्चवाचिनी प १४४ ।

१७ कल्पसूत्र कल्पद्रुम कलिका लक्ष्मी प १४९ ।

१८ कल्पसूत्र पृ २६७ ।

१९ सुरेन्द्रागुप्तारम्भे कुशीले वास्तव्ये ।

समी सुवचिपकारे वरमायास नामिराट ॥

—यहा पर्व० ११ स्तो० ६९ पृ ११

७ तन्वी कच्छगहाकच्छजाम्बी शौम्मे पतिवरे ।

मघस्वतीमुनन्दास्मे स एव पर्वणीनयत् ॥

—यहा ११७ । प ३३१

किया।^{११} संभव है मुनन्दा का ही भागवतकार ने जयन्ती नाम दिया हो। क्योंकि श्वेताम्बर ग्रन्थानुसार वह अरण्य में एकाकी प्राप्त हुई थी। उसकी सोन्दर्य-सुषमा अत्यधिक होने के कारण वह वनदेवी के मह्य प्रतीत हो रही थी।^{१२} उसके सोन्दर्य तथा भद्रगुणों के कारण ही भागवतकार ने उसे इन्द्र की पुत्री समझा है। और पुत्री समझकर वरण किया है। श्वेताम्बर ग्रन्थों की तरह^{१३} भागवतकार ने भी उनके सौ सन्तान बताई है।^{१४}

भरत और बाहुवली का विवाह

श्री ऋषभदेव ने यौगनिक धर्म को मिटाने के लिये जब भरत और बाहुवली युवा हुए तब भरतसहजान ब्राह्मी का पाणि-प्रक्षालन बाहुवली से करवाया और बाहुवली सहजान सुन्दरी का पाणिप्रक्षालन भरत से करवाया।^{१५} इन विवाहों का अनुकरण करके

७१ गृहमेधिना वर्मानुशिक्षमाणो जयन्त्यामिन्द्रवत्तायामुभय लक्षणं कर्म समाम्नायाम्नातमात्ममिमुञ्जन्नात्मवानामात्मममानाना जत जनयामास ।

—भागवत ५।४।८।५५७

७२ सा य अतीव उक्किटुखरीरा देवकणाविव तेषु ख बखतरेसु जह वन-देवता तह विहरति, त च एकलिय यदु केति पुरिसा साहन्ति, ताहे भाभी त दारिय गहाय भवति—उसमस्स भारिया भविस्सति ति ।

—आवश्यकपूणि जिनदास पृ० १५२-५३

७३ तए ए सुमङ्गलाए बाहु य पीढी य अमुत्तरेहत्तो चइऊण मिहुणय जास, ततेण सा सुमङ्गलादेवी जग्गाणि एधूवपन्न पुत्तजुमल-गाणि पसवति ।

—आवश्यक पूणि, जिनदास १५३

७४ भागवत ५।४।८।५५७ ।

७५ युष्मिर्वर्मनिषेधाय भरताय ददी प्रभु ।

सौदर्मा बाहुवलिनि सुन्दरी गुणसुन्दरीम् ॥

भरतस्य च सौदर्मा ददी ब्राह्मी जगत्प्रभु ।

भूषाय बाहुवलिने तदादि जनताप्यथ ॥

—श्री कासलोक प्रकाश सर्व० ३२, श्लो० ४७-४८

जनता ने भी भिन्न भोजन में समुत्पन्न कन्याया को उनके माता पिता प्राप्ति अभिभावकों द्वारा दान में प्राप्त कर पाणिग्रहण करना धुई किया। इस प्रकार एक नवीन परम्परा प्रारम्भ हुई।

आचार्य जिनसन ने ब्राह्मी सुन्दरी के विवाह का वर्णन नहीं किया है। प्रज्ञाचम्पू प० सुखलाल जी भी उन्हें अविवाहित मानते हैं + परन्तु उन्होंने प्राचीन स्वेताम्बर ग्रन्थों के कोई भी प्रमाण प्रस्तुत नहीं किये।

ऋषभदेव का काल भारी उद्यमपुत्र का काल था। उस समय प्राकृतिक परिवर्तना के साथ मानवीय व्यवस्था में भी घासूल परिवर्तन हो रहा था। परिस्थितियाँ पलट रही थी। परिवार प्रथा

- (ब) स्त्रियाँ व दाम्पत्यमित्र विरुद्ध
दण्ड अस्त्रमित्र पवन।

—आर निबु पा ११४

- (ग) भगवता युगलधम्मव्यवच्छेदाय भरतन सङ्ग जाता ब्राह्मी
बाहुवलिने दत्ता बाहुवलिना बहुवता सुन्दरी भरताय।

—आश मन वृत्ति पृ २

- (घ) भरतस्व साधप्रसूता ब्राह्मी सा बाहुवलाय परिणामिता
बाहुवलासागे जाता सुन्दरी सा भरतस्यापिता। भरतन
स्त्रीरत्नार्थ रजिता एव युगलधर्मो विचारित थी ऋषभदेव।

—कल्पद्रुम कलिका चम्पी पृ १४४।१

- ७६ (क) मित्रगोत्रदिका कन्या दत्ता पित्रादिभिर्मुदा।
मित्रिनोपायस्य प्रायः प्रवर्तत सध्व सङ्ग ॥

—श्री कालताक प्रकाश स २२ वला ४६

- (ख) इति दृष्ट्वा सत आरम्भ प्रायो भोके—पि कन्या पित्रादिना दत्ता
सती परिधीयते इति प्रवृत्तम्।

—आश नु मन वृत्ति प १

- + दशन मन चिन्तन सा १ भववान् ऋषभदेव बने तेमना परिवार
प २३६

जन शकाव २ करवटी १६६६ जन परम्परा के आदान

का प्रारम्भ हो रहा था और सप्तह वृत्ति का सूत्रपात हो चला था। ऐसी स्थिति में अपराधवृत्ति का विकाम होना भी स्वाभाविक था और वह हो रहा था।

सर्वप्रथम राजा

पूर्व में यह बताया जा चुका है कि श्री ऋषभदेव के पिता 'नाभि' अन्तिम कुलकर थे। जब उनके नेतृत्व में ही धिक्कारनीति का उल्लंघन होने लगा, प्राचीन मर्यादाएँ विच्छिन्न होने लगी, तब उस अवस्था में योगलिक धवराकर श्री ऋषभदेव के पास पहुँचे और उन्हें मारी स्थिति का परिज्ञान कराया।^{१०} ऋषभदेव ने कहा—“जो मर्यादाधो का प्रतिक्रमण कर रहे हैं उन्हें दण्ड मिलना चाहिए और यह व्यवस्था राजा ही कर सकता है, क्योंकि शक्ति के सारे स्रोत उसमें केन्द्रित होते हैं।” समय को परखने वाले नाभि ने योगलिकों की विनम्र प्रार्थना पर ऋषभदेव का राज्याभिषेक कर “राजा” घोषित किया।^{११} ऋषभदेव राजा बने और गेप जनता प्रजा। इस प्रकार पूर्ण चली आ रही “कुलकर” व्यवस्था का अन्त हुआ और एक नवीन अध्याय का प्रारम्भ हुआ।

राज्याभिषेक के समय युगलसमूह कमलपत्रों में पानी लाकर ऋषभदेव के पद-पद्मों का सिंघन करने लगे। उनके विनीत स्वभाव

७७ नीतीण भद्रकर्मणे निवेयण उषभसामिस्स

—आव० नि० गा० १६३ म० वृ० प० १६३

(ख) आवश्यक चूर्ण—पृ० १५३

७८ राया करेइ दड सिद्धे से वेत्ति अम्हवि स होउ ।

मग्यह य कुलकर, सो य वेइ उषभो य भे राया ॥

—आव० नि० गा० १६४ म० वृ० १६४

(ख) आवश्यक चूर्ण पृ० १५३-१५४

(ग) विदितानुरागमापौरप्रकृतिजनपदो राजा ।

नाभिराज्य समक्षमेतु रक्षायामभिषिक्त्य ॥

—श्री महायवत ५।४।३ पृ० ५५६

को लक्ष्य म रखकर नगरी का नाम विनीना' रखा' उसका अपर नाम अयोध्या भी है ।'

उस प्रान्त का नाम विनीत भूमि' और इक्ष्वाग भूमि' पड़ा । कुछ समय के पश्चात् प्रस्तुत प्रान्त मध्यदेव' के नाम से प्रख्यात हुआ ।^३

राज्य-व्यवस्था का सूत्रपात

इसी प्रकार श्री ऋषभदेव ने मानव जाति को विभाग के गत से बचाने के लिए और राज्य की मुख्यवस्था राज्य आरक्षक दल की स्थापना की जिसके अधिकारी 'अ' कहलाये । भूमिमण्डल बनाया जिसके अधिकार भोग नाम से प्रसिद्ध हुए । सम्राट के समीपस्थ जन जो परामर्श प्रदाता थे वे राजन्य के नाम से विख्यात हुए और अन्य राजकर्मचारी क्षत्रिय नाम से पहचाने गये ।^४

७६ भित्तिपापसाहिमरे उदय भेग सुहृन्ति पाप्मन् ।

साहु विधीया पुरिमा विनीमनयरी अह निबिद्धा ॥

—आम नि गा १९६ म वृ १९५।१

(क) आवश्यक भुजि प १९४ ।

७७ मध्येऽधमरतस्मात्तु चक्रे चमचम पुरम् ।

सावेत नामत स्वात विनीतजनतावृत्तम् ॥

—पुराणसार १५।१।१६

७८ आवश्यक भुज मम कृति प १९७-२ ।

७९ (क) आवश्यक भुज म कृति प १९३ ।

(ख) आम नि हारिमन्त्रीय टीका प १२-२ ।

८० आवश्यक निर्मुक्ति हारि टी० गा १९१ प १९-२ ।

८१ (क) उम्मा भोपा रावन्व अतिथा सवहो मव चवहा ।

आरत्तगुण्ययसा सेसा वे अतिथा से उ ॥

—आम नि गा १९८ म वृ प० १९५।१

(ख) एव तस्व अभितितस्व चवम्बिहो रावर्धगहो भवति त जहा—
उम्मा भोपा राह्ना अतिथा । उम्मा ज आरत्तित्यपुरिमा

मलय गिरी के अभितानुसार वन्ध (वेडी का प्रयोग) और घात (डण्डे का प्रयोग) ऋषभनाथ के समय प्रारम्भ हो गये थे।^{१०} और मृत्यु दण्ड का आरम्भ भरत के समय हुआ।^{११} जिनसेनाचार्य के अनुसार वधवन्धन आदि आरीरिक दण्ड भरत के समय चले।^{१२}

आद्यसमस्या का समाधान

कन्द, मूल, पत्र, पुष्प और फल ये ऋषभदेव के पूर्ववर्ती मानवों का आहार था।^{१३} किन्तु जनसंख्या की अभिवृद्धि होने पर कन्द मूल

(ख) परिहासना उ पटमा, भर्तृनिवधो उ होइ वीया उ ।

चारणप्रविश्याई बृहस्पति उ उग्रिहा नीती ॥

—आवश्यक भाष्य गा० ३

६० निगडाद्वयो वन्धो, घातो द द्वादितालनया ।

—आवश्यक निर्मुक्ति० गा० २१७

(ग) कथा निगडादिभिर्वन — मयमन, घातो दण्डादिभिस्तावता, एतेऽपि वर्णनाम्नवन्धघातास्तत्काले यथायोगे प्रवृत्ता ।

—आव० नि० मन्त्र० वृत्ति प० १६६-२

६१ मारणया जीवन्वहो जज्ञा नामादयाण पूयातो ।

—आव० नि० गा०

(घ) मारण जीवन्वधो-जीवन्व जीविताद् व्यपरोपणं (१३) भर्तृदेवकाले समुत्पन्न । नक्षत्रेण

—आव० नि० मन्त्र० वृत्ति ।

६२ शरीरदण्डनवन्धं वधवन्धादिसंज्ञकम् । पृ० १४६

दृष्ट्वा प्रबलदोषाणां भर्तृतेन नियोजितम् ॥

—महापुराण—तृतीय पर्व

६३ आनी मूलाहारा य पत्तहा ।
पुष्पा जडया फिर कुलगर ।
न्यनेकज ।

(ख) नामविज्ञपत् ॥

(ग) य गा० ५ —त्रिपिठि १।२।६६० मे ६६२
जिनदास

नीति का प्रचलन किया।^१ चार प्रकार की दण्ड-व्यवस्था निर्मित की। (१) परिभाष, (२) मण्डलबन्ध (३) चारक (४) छविच्छेद।^२

परिभाष

कुछ समय के लिये अपराधी व्यक्ति को आश्रयपूर्ण शब्दों में नजरबन्द रहने आदि का व्यवहार देना।

मण्डलबन्ध

सीमित भ्रम में रहने का दण्ड देना।

चारक

बन्दीगृह में वन्द करण का दण्ड देना।

छविच्छेद

करावि भगपाङ्गो के छटन का दण्ड देना।

य चार नीतियाँ जब चली इम्म विद्वाना के विभिन्न मत हैं। कुछ विद्वानों का मान्य है कि प्रथम दो नीतियाँ शुपम के समय चली^३ और दो भरत के समय। आचार्य अभयदेव के मन्तव्यानुसार ये चारों नीतियाँ भरत के समय चली।^४ आचार्य भद्रबाहु और आचार्य

८६ स्वामी समाशमभेदवर्णोपायचतुष्टयम्।

उपपद्यन्स्वान्तरीचतुष्टयमकल्पयन् ॥

—विपट्टि १।२।६५६

(क) नीतिओ उवमसामिम्भि जेव उवमाओ।

—जावत्थव बुणि ५ १५६

८७ स्वामाङ्ग वृत्ति ७।३।५५७।

८८ आश्रयमृपमकाले जने तु भरतकाल इत्यन्य।

—स्वामाङ्ग वृत्ति ७।३।५५७

८९ परिभाषणा उ पद्यमा मण्डलबन्धमि होई वीया तु।

चारण छविच्छेदादि भरद्वाज अठविहा नीई ॥

—स्वामाङ्ग वृत्ति ७।३।५५७

मलय गिरी के अभितानुसार दन्ध (वेडी का प्रयोग) और घात (डण्डे का प्रयोग) ऋषभनाथ के समय प्रारम्भ हो गये थे।^{१०} और मृत्यु दण्ड का प्रारम्भ भरत के समय हुआ।^{११} जिनसेनाचार्य के अनुसार वधवन्धन आदि शारीरिक दण्ड भरत के समय चले।^{१२}

शास्त्रसमस्या का समाधान

कन्द, मूल, पत्र, पुष्प और फल ये ऋषभदेव के पूर्ववर्ती मानवों का आहार था।^{१३} किन्तु जनसंख्या की अभिवृद्धि होने पर कन्द मूल

(ख) परिहासना उ पत्रमा, भर्त्सित्वो उ ह्योड वीया उ ।

चाण्डालविशेषाट् अहम्न चउच्चिज्ञा नीनी ॥

—आवश्यक भाष्य गा० ३

६० निगडाडजमा मन्वा, घातो द टादिनासनाया ।

—आवश्यक निरुक्ति० पा० २१७

(ग) दन्धा निगडादिभिर्बभूव — मयमन, घातो दण्डादिभिस्ताटना, एतेऽपि अर्धव्याप्तवन्धघातास्तत्काले यथायोगे प्रवृत्ता ।

—आव० नि० मन्० वृत्ति प० १६६-२

६१ मारणया जीवन्तो जज्ञा नागाडयाण पूथातो ।

—आव० नि० गा०

(ङ) मारण जीवन्तो-जीवन्त्य जीविताद् अपरोपणं^{१३}
भरतेश्वरकाले समुत्पन्न ।
नमस्तस्य

—आव० नि० म० वृत्ति ।

६२ शरीरवण्डनञ्चैव वधवन्धादिलक्षणम् ।

• पृ० १५६

मृणा प्रव्रलदोषाणा अरतेन निमोजितम् ॥

—महापुराण—तृतीय पर्व०

६३ आमी य कदहारा मूलाहारा य पत्तहा^{१४}
पुष्पफलभोडणोऽति य खड्गा किर कृत्तग^{१५}
न्यनेकधा ।

(घ) आव० मूलभाष्य गा० ५ —नामजिज्ञप्त् ॥

(ग) आवश्यक धूर्ति-जिनदाम —त्रिपट्टि १।२।६६० से ६६२

(ग) आवश्यक धूर्ति-जिनदाम

करामा^{१००} धीर सुन्दरी को गणित विद्या का परिज्ञान कराया।^{१०१}
व्यवहारमाधन-हेतु मान [प्राप] उ मान [नाला मामा आदि वजन]

(घ) अम्बूडोप प्रशस्ति वृत्ति ।

(ङ) कल्पसूत्र सुलोचिनी टीका १ ४६६ सारा नवाम

१० रा० सिधाविहार विनोद बभौए बाहिबन्धेस ।

—आव नि गा २१२

(ग) आवश्यक हरिमन्त्रावृत्ति भाष्य गा ६ ५ १३२ ।

(ग) विनोदावश्यक भाष्य वृत्ति १३२ ।

(घ) अष्टांग निरीक्षाद्वया अपसम्बन्ध पानिना ।

—निपटि १।२।६६

(ङ) बभौए बाहिबन्धेस सहो बाइता ।

—आवश्यक कृति पू १४६

(घ) कल्पसूत्र सुलोचिका टीका सारायाई पू ४६६ ।

(घ) शुपभन्ध न ही सम्भवत सिधि विद्या के लिए सिधिकावल का उद्भावन किया । शपभन्धेव ने ही सम्भवत ब्रह्म विद्या की शिक्षा के लिए उपयायी बाह्यी सिधि का प्रचार किया था ।

—हिन्दी विश्व-कोष श्री मनेन्द्रनाथ बसु प्र भा ५ ६४

११ गणित सत्ताण सुन्दरीए कामेन उपइह ।

—आवश्यक निपु ति गा २१२

(क) सुचयय नामहत्येन गणित ।

—आवश्यककृति पू १५६

(ग) विनोदावश्यक भाष्य वृत्ति १३२ ।

(घ) आवश्यक हरिमन्त्रावृत्ति ५ १३२ ।

(ङ) सर्वनामास सव्येन सुन्दरी गणित पून ।

—निपटि १।२।६६३

(क) विष्णु करुणनाम्ना मिलनकरमालिकार ।

उपाधिसिद्धि नम्याम्बान बाहु रनुकमान् ।।

—यह्युपय १६।१ ४।६५५

अथमान [गज, फट, इच] व प्रनिमान [छट्टाक, मेर, मन, आदि] गियाये ।^{१०८} गरिग यादि गिरोने की कन्ना भी ब्रताई ।^{१०९}

उम प्रकार गन्नाद् श्री ऋषभदेव ने प्रजा के हित के लिए, अभ्युदय के लिए पुण्यो को बहन्त कलाएँ, म्रियो को चौमठ कलाएँ और मी मिलो का परिज्ञान कराया ।^{११०} अग्नि, मणि, और कृषि [सुरक्षा, व्यापार, उत्पादन] की व्यवस्था की ।^{१११} अश्व, हस्ती, गायो, आदि

१०२ गामुन्माणवमागममाणगमिमाऽ वस्तुगु ।

—आवश्यक नियुक्ति गा० २१३

१०३ गरिगयाई दारादसु पाता छठ गामग्नि बहणाछ ।

उपराग महपण कज्जपरिच्छेदपत्त वा ॥

—आवश्यक नियुक्ति गा० २१४

(ग) आवश्यक गृह हारिभद्रोमावृत्ति मूल भाग्य गा० ११ पं० ११२

१०८ रज्जयासमज्जे उगमागे क्काउयाओ मणिकणहणाओ गउण-
रयपज्जउराणाओ गाल्लसं गज्जाओ धावाट्ठ मल्लिमाकुणे मियागय
च कम्माण तिम्मि मि पयाहियाए उवदिताऽ ।

—कल्पसूत्र, सू० ११५। पृ० ५७, पुष्पाविजय स०

(ख) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सू० ३६, पृ० ७७ अधो० म० ।

(ग) एतच्च सर्वं साययमपि साकानुस्मर्या ।

श्यामी प्रवर्तयामास, जामन् कर्तव्यमात्मन ॥

—विपण्ठि १।२।१७१

१०५ अग्निमहि कृषिर्विद्या वर्णज्य क्षत्रपमेव च ।

कर्माणीमानि पाठा रघु प्रजावीचनहेतव ॥

तत्र वृत्ति प्रजानां भ अगवान् मल्लिकोदरात् ।

उपादिशत् मन्त्रा हि भ तदासीज्जयन्तुर ॥

नशक्तिकर्म मेवाया मणिनिर्गविद्या स्मृता ।

कृषिभूकपरो प्रोक्ता विद्या शारत्रणजीवन ॥

वर्णज्य वर्णिनां कम, क्षिरप ग्यात् करकोपलम् ।

राज्य चित्रकलापत्र्येवादि बह्वना स्मृतम् ॥

—महापुराण १७६ से १८२, पं० १६ पृ० ३६२

पशुओं का उपयोग प्रारम्भ किया।^{११} जीवनापयोगी प्रवृत्तियों का विकास कर जीवन को सरस गिष्ट और व्यवहार योग्य बनाया।^{१२}

वर्णव्यवस्था

योगनिका के समय में वर्ण-व्यवस्था नहीं थी। सम्राट श्री श्रपभदेव ने क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों की स्थापना की।^{१३} यह वर्णन आवश्यक नियुक्ति आवश्यक क्षत्रिय आवश्यक मलयगिरि वृत्ति आवश्यक हारिभद्राया वृत्ति त्रिपष्ठिशालाका पुरुषचरित्र-प्रभृति श्वेताम्बर शम्भो म स्पष्ट रूप से नहीं है। परवर्ती विशो ने उस पर

(क) पञ्चापत्तिय प्रथम विधीविधु ।

मन्त्रान् कृप्यादिषु कमनु प्रजा ॥

—शृङ्खलवन्धु स्तोत्र सप्तमभद्राचार्य

१ १ जाता हत्पी गानो यहिनाह रजसमहिमिमत ।

मिस्त न एवमा^{१४} बडम्बिह सनह कृषह ॥

—आवश्यक हारिभद्राया वृत्ति वा० २ १ पृ १२८

१ ७ कलाद्युपायन प्राप्तमुत्तमवृत्तिकस्य चौर्यादिभ्यसमाप्तिकिरपि न स्वात्,
कर्माणि च कृपिवागिग्यायेनि यथमभ्यस्यमोत्कृष्टमेवमित्तानि
शौच्यतानि प्रजाया हितकराणि निर्वाहाम्बुवपहेतुत्वात्

—शम्भुदीप प्रकाश-वृत्ति २ वक्षस्कार

(ख) पशुया उ वेसिमाह सम्बकलासिप्यकम्माह

—आवश्यक नियुक्ति वा २२६

(ग) अथवा मुलमासीन पुत्र नाचिप्रचोदिता ॥

उपतस्सु प्रजा सर्वा जीविकोपायवीप्सव ॥

कि नाथ करवामति स्थिता नावमानुकम्पया ॥

प्रजाम्यो हर्षयामास कर्मास्त्यकलापुषार ॥

—पुरावस्तार ११-१६।१।३६

१ ८ उत्पादितान्शो यथा शुभा मेवास्तिवत्ता ।

क्षत्रिया वगिजे शूद्रा सतनापाविमिषु^{१५} ॥

—महापुराण १८३।१६।३६२

अवश्य कुछ लिखा है, ^{१०९} पर दिगम्बराचार्य जिनसेन की तरह विगद रूप में नहीं। यहाँ यह स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक है कि वर्ण-व्यवस्था की संस्थापना वृत्ति और आजीविका को व्यवस्थित रूप देने के लिए थी, न कि ऊँचता व नीचता की दृष्टि से।

मनुष्य जाति एक है। केवल आजीविका के भेद से वह चार प्रकार की हो गई है—व्रतस्मकार से ब्राह्मण, शस्त्रधारण से क्षत्रिय, न्यायपूर्ण धनार्जन से वैश्य और सेवावृत्ति से शूद्र। ^{११०} कार्य से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होते हैं। ^{१११}

आचार्य जिनसेन के मन्तव्यानुसार सम्राट् श्री ऋषभदेव ने स्वयं अपनी भुजाओं में शस्त्र धारण कर मानवों को यह शिक्षा प्रदान की कि धृतिराष्ट्रों से निर्बल मानवों की रक्षा करना अतिसम्पन्न व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य है। श्री ऋषभदेव के प्रस्तुत आह्वान से कितने ही व्यक्तियों ने यह कार्य स्वीकार किया। वे क्षत्रिय नाम से पहचाने गये। ^{११२}

१०९ अथवा ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रभेदात् तत्र-‘ब्राह्मणा ब्रह्मचर्येण, क्षत्रिया शस्त्रपाण्यः, कृषिकर्मकरा वैश्या शूद्रा श्रेष्ठनकारका ।’

—कल्पलता-समयसुन्दर गणी पृ० १६६

(क) पञ्चमर्षि-विमलसूरि उ० ३ भा० १११-११६

(ग) पञ्चाश्वतुर्वर्षस्थापन कृतम्

—कल्पद्रुम कलिका० तस्मी० पृ० १४४

११० मनुष्यजातिरेकैव जातिनामोदयोद्भवा ।

वृत्तिभेदाहितादभेदाच्चातुर्विध्यमिहामनुते ॥

ब्राह्मणा व्रतस्मकारात् क्षत्रिया शस्त्रधारणात् ।

वणिगोऽर्थाजिनान्याप्याच्छूद्रा न्यवृत्तिमश्रयान् ॥

—महापुराण प्लोक० ४५-४८ पर्व० ३८ पृ० २४३ दि० भा०

१११ कम्मुणा वमणो होइ, कम्मुणा होइ क्षत्रियों ।

वड्ढो कम्मुणा होइ मुटो हवइ कम्मुणा ॥

—उत्तराध्यायन २५।३३

११२ म्वदोर्म्मा घाम्भन् मस्स क्षत्रियानसुज्जद विभु ।

अतथापणियुक्ता हि क्षत्रिया शस्त्रपाण्य ॥

—महम्मुराण २४३।१६।३६८

श्री ऋषभदेव ने दूर दूर तक क प्रदेशों की जमा बल से पदयात्रा कर जन-जन के मन में यह विश्वासोत्पत्ति प्रज्वलित की कि मनुष्य को सतत गतिमान रहना चाहिए एक स्थान से द्वितीय स्थान पर वस्तुओं का आयात निर्यात कर प्रजा के जीवन में सुख का संचार करना चाहिए। जो व्यक्ति प्रस्तुत कामों के लिए सन्नद्ध हुए वे वश्य की संज्ञा से सम्मिहित किये गये।^१

श्री ऋषभदेव ने मानवा को यह प्रेरणा प्रदान की कि कम पुण्य से एक दूसरे के सहयोग के बिना कार्य नहीं हो सकता। अतः ऐसे सेवा निष्ठ व्यक्तियों की आवश्यकता है—जो बिना किसी भेदभाव के सेवा कर सकें। जो व्यक्ति सेवा के लिए तैयार हुए उनको श्री ऋषभदेव ने सूत्र कहा।^{११}

इस प्रकार शास्त्र धारण कर आजीविका करने वाले क्षत्रिय हुए खेती और पशु पालन के द्वारा जीविका करने वाले वैश्य कहलाये और सेवा धूम्रपा करने वाले सूत्र कहलाये।^{१२}

ब्राह्मण वरुण की स्थापना सम्राट भरत ने की।^{१३} स्थापना का

१११ ऊचम्या वर्धमान् आश्राम आश्रमीन् वचिन्व प्रभु ।

कलत्पत्तारिषाभानि तद्वृत्तिर्नार्त्तवा यत ॥

—महापुराण १४४।१६।३६८

११४ स्ववृत्तिनियतान् वृत्तान् परम्परायमानान् सुधी ।

वर्णोत्तमेषु क्षुभना तद्वृत्तिर्नैकधा स्मृता ॥

—महापुराण १४४।१६।३६८

११५ क्षत्रिया शास्त्रजीवित्व अनुसूय तपश्चरन् ।

वस्यस्व कृषिनादिज्यपाशुपान्धोपजीविता ॥

—महापुराण १४४।१६।३६८

११६ ताह भरता रज्य नावत्ता से न भाउए पञ्चदश पाऊन
अर्चितीय नवति—कि यम इत्यादि चोर्नाह ? अङ्किति करेति कि
साए पीकराएणि सिरीए ? ना तज्जना न पेण्डति (पाया) अदि
मासरो मे इच्छन्ति यो जीवें हेमि । वग्न न आगतो ताहे भाउए
मोमहि निजन्तेति से न इच्छन्ति नव नमिदु । ताहे पितेति एतेति

पास जाते हैं और पुन राज्य ग्रहण करने के लिए अभ्यथना करते हैं किन्तु स्वयं राज्य का वे वमन के समान जानकर पुन ग्रहण नहीं करते। तब सम्राट् भरत ने भ्राताओं को भोजन कराने हेतु पाँच सौ शकट भोजन भंगवाया और उन्हें भोजन ग्रहण करने के लिए निमन्त्रित किया। पर भगवान् श्री ऋषभदेव ने कहा—भावाकर्मी राज्यपिण्ड आदि आहार धर्मणो के लिए त्याज्य है। शक्रेन्द्र के निर्देशानुसार वह

प्रतिदिन भरीय भोजनस्य कुप्यादि च न कस्य च दद्यात् ।
पररामितस्य च भुक्ते च भरीयद्विह्वारामस्य च भिषतर्बतस्य च
जितो भवान् बद्धने नय तस्मात्पा हन मा हनेति ते तर्बत
वृत्तवन्तः ।

—आवश्यं भव भुक्ति प ११

- (ग) ज्ञानना वृद्धता राज्यमेतेषां वि कृत मया ?
जगत्तरतमगुणेन भस्मवामयिनेन हा । ॥
अन्धेभ्योऽपि दशानोऽस्मि सक्षी भोजनलाभिमान् ।
तस्य मे भस्मनि हृतमिव भूत्स्य निष्पन्नम् ॥
कान्तोऽप्याह्व कान्त्यो दद्यात्सत्तापचीवति ।
ततोऽपि हीनस्तद्वद् भोगान् भुञ्जे बिना ह्यमून् ॥
धीयमानान् यदि पुनर्भोगान् भूयोऽपि मञ्जुम् ।
आवदीरक्ष्यो निष्ठा माससपत्निका इव ॥
एवमातोष्य भरत पादभूषण जगत्पुरो ।
भ्रातृन् निमन्त्रयामास भोगाय गच्छितरञ्जलि ॥
प्रभुरप्याक्षिभगवृज्जासय । विद्याम्यते ।
आतरस्त महासत्त्वा प्रविज्ञातमहाव्रता ।
सत्तागसारता आत्मा पणितम्यस्तपूर्वविग ।
न क्षमु प्रतिवृद्धिं गोपाल भूयोऽपि दान्तवत् ॥
× × × ×
एव निचिन्त्य मन्दश्चत पञ्चभिरस्वच ।
बनाम्याऽऽहारमनुजान् स्वमभ्यसत् स पूर्ववत् ॥
स्वामी भूयोऽप्युवाचवमन्नादि भरतेश्वर ।
आपाकयोऽऽहृत चानु मतीना न हि बल्यते ॥

महापुराण के अनुसार सम्राट् भरत पटलण्ड पर दिग्विजय प्राप्त कर और अपार धन लेकर जब अयोध्या लौटे तो उनके मानस में यह सकल्प उत्पन्न हुआ कि इस विराट् धन का त्याग कहाँ करना चाहिए ?^{११} इसका पात्र कौन व्यक्ति हो सकता है ? प्रतिभाश्रुति भरत ने धीघ्र हा निराश किया कि ऐसे विलक्षण व्यक्तियों को चुनना चाहिए जो तीनों वर्गों का चिन्तन मनन का आलाप प्रदान कर सकें ।

सम्राट् भरत ने एक विराट् उत्सव का आयोजन किया । उसमें नागरिकों को निषिद्ध किया । विजो की परीक्षा के लिए महल के माग में हरी घास फल फूल लगा लिये ।^{१२} जो वृत्तरहित थे वे उस पर होकर महल में पहुँच गये और जो कर्त्री थे वे वही पर स्थित हो गये ।^{१३} सम्राट् ने महल में न मान का कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि देव हमने सुना है कि हरे भ्रकुर आदि में अनन्त निगोन्धिया जीव रहते हैं जो नेत्रों से भी निहारें नहीं जा सकते । यदि हम आपने पाम प्रस्तुत माग से आश है तो जो गोमा के लिए नाना प्रकार के सज्जित फल-फूल और भ्रकुर बिछाये गये हैं उन्हें हमें रीबना

११६ भरतो भारत वप निर्मित्य मह पाषिष ।
पप्था नर्पमहस इनु विना निवृत्ते जवात ॥
हृत्कृत्यस्य तस्यान्तविचिन्तेयमुपपद्यत ।
पराय सम्पदास्माकी तोषयोगा वध भवत ॥

—महापुराण ४-५।३५।२४ द्वि भा

११७ हरिर्तिरभ्रकुर पुष्य फलवधानीरामङ्गवध ।
सम्प्राडचीकृतपा परीणायै स्ववसमनि ॥

—महापुराण ११।३५।२४ त्रि भा

११८ तप्वरता विना मङ्गलान् प्राविशन् नृपमन्दिरम् ।
तानेव स समुत्पाय वेपानाङ्गवधत् प्रभु ॥

—महापुराण १२।३५।२४ द्वि भा

पड़ता है तथा बहुत में हरितकाय जीवों की हत्या होती है।^{१२२} सम्राट् ने अन्य मार्ग से उनको मन्दर बुलवाया^{१२३} और उनकी दया वृत्ति से प्रभावित होकर उन्हें ब्राह्मण की मन्त्रा दी और दान, मान आदि सत्कार से सम्मानित किया।^{१२४}

वर्गात्पति के सम्बन्ध में ईश्वरकृतृत्व की मान्यता के कारण वैदिक साहित्य में खासी अच्छी चर्चा है। उस पर विस्तार में विस्लेषण करना, यहाँ अपेक्षित नहीं है। मधेय म- पुरुष सूक्त में एक सवाद है और वह सवाद कृष्ण, शुक्लशत्रु, ऋक् और अथर्व इन चारों वेदों की संहिताओं में प्राप्त होता है।

प्रश्न है—ऋषियों ने जिस पुरुष का विधान किया—मे कितने प्रकारों से कल्पित किया? उसका मुख क्या हुआ? उसके बाहु कौन धताये गये? उसके (आव) उरु कौन हुए? और उसके कौन पैर कहे जाते हैं?^{१२५}

उत्तर है—ब्राह्मण उसका मुख था, राजन्यशत्रिय उसका बाहु, वैश्य उसका उरु, और शूद्र उसके पैर हुए।^{१२६}

१२२ सत्येदामन्तसो जीवा इग्निष्वङ्कुरादिषु। ✓

निगोता इति सर्वत्र देवान्मामि श्रुत वच ॥

तस्माद्देवानामिराक्रान्तम् अद्यत्वे त्वदमुहाङ्गणम्।

कृतोपहारमार्द्रां फलपुष्पाङ्गुलिभिः ॥

१२३ कृतानुदम्बना भूयस्वयस्मिन् किल तेऽस्तिकम्।

प्राप्तुकेन यथाऽन्येन भेजु ब्राम्हा नृपाङ्गणम् ॥

१२४ इति सट्पनात् सर्वान् गोऽभिजनान् दृक्षतान्।

पूजयामास लक्ष्मीवान्, दानमानादिसत्कृतं ॥

—महापुराण १२।३८।२४१

१२५ यत्पुरुष व्यदधु कतिधा व्यकल्पयन्।

भुज किमस्य, की बाहु, का [त्र] अरु, पाद [वु] उच्यते?

—ऋग्वेद महिता १०।६०, ११-१२

१२६ ब्राह्मणोऽस्य भुजमासीद् बाहु राजन्य २त।

कश् तदस्य यदस्य पदस्या शूद्रो अजायत ॥

—ऋग्वेद संहिता-१०।६०।१२।

यह एक साक्षणिक बगन है। पर पीछे के आचार्य साक्षणिकता को विस्मृत कर शब्दों में चिपट गये और उन्होंने कहा—ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण भुजाओं से क्षत्रिय ऊरुओं से वक्ष्य और परो से शूद्र उत्पन्न हुए। एतदथ ब्राह्मण का मुखज क्षत्रिय को बाहुज वक्ष्य को उरुज और परिचारक का पादज लिखा है।^१

वदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर भगवान् श्री ऋषभदेव को ब्रह्मा कहा है। समस्त प्रस्तुत सूक्त का सम्भव भगवान् श्री ऋषभदेव से ही हो।

जैन सत्कृति की तरह वदिक सत्कृति भी वर्णोत्पत्ति के सम्भव में विभिन्न मत रखती है। साथ ही जैन सत्कृति की तरह वह भी प्रारम्भ में जग-व्यवस्था जन्म से न मानकर कम से मानती थी।^२



(क) सुक्त अथर्ववेद संहिता । ११।१ -११

(ग) कि बाहू किमुह ?

—अथर्ववेद संहिता ११।१।१

(घ) विप्रमनियविटक्षुवा मुखबाहुस्पादवा ।

वराभात् पुत्राज्जातं न आत्माचारतभावा ॥

—भाष्येन ११।१७।११ हि भा पू प ६

१२७ वराभात् भुजाभ्यामूर्ध्व्या पदभ्या अवस्थ बभूवे ।

सजग प्रजापतेर्मोक्षानिति धर्मविदो विदुः ॥

मुखना ब्राह्मणास्तत बाहुना क्षत्रिया स्मृता ।

ऊरुमा धनियो राजन् पादना धरिणात्का ॥

—महाभारत स्तो ४-६ अध्याय २६६

१२८ न विमयाऽस्ति वपाना सर्वब्राह्मणैश्च जयन् ।

ब्रह्मणा पूजयुष्ट हि कर्मविपर्यता गतम् ॥

—महाभारत

द्वितीय अध्याय

साधक-जीवन

०

साधना के पथ पर

मन्नाट् श्री ऋषभदेव ने दीर्घकाल तक राज्य का मन्त्रालय किया, प्रजा का पुनरुत्थान किया, प्रजा में कानून की दृष्टि व्यवस्था की, उन्मूलन किया, अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार किया, नीति मर्यादा का हो कायम किया। यह प्रजा के योग्य नहीं, पाएक थे, धामका ही नहीं संवर भी थे। श्रीमद्भागवत के अनुसार उनका धामन काल में प्रजा की एक ही चाह थी कि प्रतिफल प्रतिभाग हमारा प्रेम प्रभु म

- (ग) अप्रवृत्ति उत्सुग तमसा नृभवापयो ।
 वर्णाश्रमव्यवस्थादय तदाऽऽमप्र मकर ॥
 वेतायुने स्वनिबल बर्मास्म प्रमिद्वयसि ।
 वर्णाश्रम विभागदय वेताया तु प्रमोक्षता ॥
 मान्ताश्च पुष्पिणस्त्वय कमिणो दु तिमस्तथा ।
 सत प्रवर्तमानास्ते वेताया जगिरे पुन ॥

—वायुपुराण ८।३३।८६।१७ आदि अध्याय

- (ग) तस्मात्प्र गोऽश्ववत् किंचिज्जानिमेदोस्ति दहिनाम् ।
 कायभेदनिमित्तेन मयेस कृत्रिय कृत ॥

—अविष्य पुराण, अध्याय ८

स्त्रिष्टानुश्रुताय, दुष्टनिग्रहाय, प्रमोक्षसिद्धिहाय च, ते च राज्यरिषाद्विधिया सम्बन्ध प्रवर्तमाना प्रमेष परेषा महापुरुषमार्गाप-
 देशकृतया चोर्वादिष्यसननिवृत्तकतो नारकातिथयानिवाकृतया ऐहिका-

ही नगा रहे । वे किसी भी वस्तु की चाह नहीं करते थे ।^१ अतः म
अपना उत्तराधिकारी ज्येष्ठ पुत्र भरत को बनाकर और नेप
निन्यानव पुत्रों को पृथक्-पृथक् राय देकर स्वयं साधना के पथ पर
बढ़ने के लिए प्रस्तुत हुए ।^१

मुष्मिकमुबसाभक्तया च प्रचस्ता एवति । महापुरपप्रकृतिरपि सन्न
परार्थत्वव्याप्ता बहुमुनास्य—दोषनायकारभविचारणापूर्विकवति ।

स्वानाङ्गपञ्चमाभ्यवनेऽपि—वस्त्र च शु चरमाणस्त एव
निम्ना ठाना पञ्चता त जहा—छत्राया (१) गग (२) राजा
(३) माहावर्ध (४) सरीर (५) मिस्थाद्यालापकवृत्ती रामो
निधामावित्स्व राजा नरपतिस्तस्य धर्मसहायकस्य कुप्यस्य साधुरस्य
णावित्युक्तमस्तीति परम-करणापरीतवेतस परमधर्मप्रवर्तकस्य
ज्ञानवितययुक्तस्य भगवतो राजधर्मप्रवर्तकस्य न नापि अनीचिनी
वेतसि चिन्तनीया ।

—चम्पूटीप प्रगति टाका—भूतरा वसस्कार

१२६ भगवत्तर्पणेन परिरक्षमाण एतस्मिन् वर्षे न वक्ष्यन् पुत्रो
वाञ्छित्यदिष्टमानमिवाभ्यवनेऽयस्मात्कल्पेन किमपि कर्तुमिच्छकस्तं
भर्तव्यनुसेवनं किञ्चित्तत्वेहातिशयमन्तरेण ।

—श्री भट्टभाष्यत ५।५।१८ प ५५८-५५९

११ (क) उवधितिता पुत्तसय रजसए वधितिचइ ।

—चम्पू सू ३६ प ७७ अमोल

(ख) उवधितिता पुत्तसय रजसए वधितिचइ ।

—कल्पसूत्र सू १२५ प ५७ पुष्य

(ग) विवति । १।५।१९ से १७ प ६८

(घ) स्वतनवसतवष्ट परमयागवत मयव मनपरायसु भरत
वरणिप्रतनात्यामिषिष्य स्वम भवन एवोर्वरित
शरीरमानपरिपह बद्धावर्तयिवसान् ।

—श्री भट्टभाष्यत ५।५।२८।५६३

दान

अभिनिष्कमण के पूर्व श्री ऋषभदेव ने प्रभान के पुण्य-यन्त्र म एक वर्ष तक एक करोड़ आठ लाख ग्वर्ग मुद्राएं प्रतिदिन दान दी।^{१३१} इस प्रकार एक वर्ष में तीन अग्र सद्गो करोड़ और अम्मी लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान दिया।^{१३२} दान देकर, जन-जन के प्रसन्नमान में दान की भव्य-भावना उद्बुद्ध की।

महाभनिष्कमण

भारतीय इतिहास में चंद्र कुम्भा घण्टी का दिन^१ महा रमणीय रहेगा, जिस दिन राजा श्री ऋषभ राज्य-धर्म का ठुकाराज, भोग-विलास को त्याग-जनि देकर, परमात्मस्थ को जागृत करने के लिए "सर्व मावज्ज जोष पचचक्कामि" सभी पाप प्रवृत्तियों का परिहारा करता है, उस भव्य-भावना के साथ विनीता नगरी में निकलकर सिद्धार्थ उद्यान में, अग्रो क वृक्ष के नीचे, पण्ड भक्त क तप

१५१ एता हिरण्णकादी भट्ठेय अणुज्जा सयसहस्सा ।

सूरोदयमारुथ दिज्जह जा पायराणावा ॥

—आव० नि० गा० २३६

(ख) त्रिपिट० १।३।२३

१३२. तिण्णेष य कोटिसया बट्ठासीई अ हाति पाओवा ।

असिय च सयसहस्सा एय सपच्चरे दिण्ण ॥

—आव० नि० गा० २४२

(ग) त्रिपिट० १।३।२४।प० ६८

१३३. जे से गिम्हाण पडमे मासे पडमे पवये वेत्तवहुले तस्य ए वेत्तवहुलस्स भट्ठभीपवणेण ।

—कल्पसूत्र गू० १६३ पुण्य० पृ० ५७

(घ) वेत्तवहुलभट्ठभीप चरहि गहस्सेहि मो उ अवग्गहे ।

सीया सुदसणां सिद्धन्वणम्मि छट्ठेण ॥

—आव० नि० गा० ३३६

से युक्त होकर सबप्रथम परिक्षाट वने ।^{१३४} भगवान् क प्रेम से प्रेरित होकर उग्रवर्ग भोगवश राजन्य वर्ग और क्षत्रिय वर्ग के चार सहस्र माधियो ने भी उनके साथ ही समय ग्रहण किया ।^{१३५} यद्यपि उन चार

(ग) तदा च भवबहुलाष्टम्या चन्द्रमसि स्थिते ।
 मन्मथमुत्तराषाढामङ्गो मागेऽथ पवित्रम् ॥
 भव जयजयारावकोसाहसमिपाद् मृधम् ।
 उगिरिम्निमुदमिव शीघ्रमागो मगमर ॥
 उच्चक्षान चतनूनिमु गिति सिरस वचान् ।
 चतनून्मो दिग्म्य मेपामिव दातुमना प्रभु ॥

—विचिन्ति १।३। ६५ से ६७

१३४ जाब बिगीस रावहाणि मन्मथग्रेण नियन्त्रित नियन्त्रिता जयेश
 सिद्धत्पवरी उग्रवर्गो जयेश मनोगवरपावने तयेश उवापद्म
 उवागद्मिता मनोगवरपाववस्तु अहे जाब समयेश चतनूनिम लाय
 करेइता छट्टु ए मतर मन्मथपण—

—कल्पसूत्र सू १६५ पृ ५७

(क) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सू० ३६ पृ ८ —८१ अमोल

१३५ उमाए भोमाए राइमाए च सतिमाए च ।
 चउहि सहस्तेहसनी सेसाउ सहस्सपरिवारा ।

—आव नि या २४७

(ख) उमाए भोमाए राइमाए च सतिमाए च चउहि सहस्सहि
 सति एन देवहसमावाम मुडे मविता जागरामो मणवारिय
 पम्बइए ।

—कल्पसूत्र सू १६५ पृ ५७

(ग) उमाए भोमाए राइमाए च सतिमाए च ।
 चउहि सहस्सहि ऊसहो सेसा उ सहस्सपरिवारा ॥

—समवायाग १५

(घ) उमाए भोमाए राइमाए सतिमाए चउहि सहस्तेहि
 सति—

—जम्बूद्वीप सू ३६ पृ ८ —८१ अमोल

सहस्र साधियो को भगवान् ने प्रवृत्त्या प्रदान नहीं की, किन्तु उन्होंने भगवान् का अनुसरण कर स्वयं ही मृचन आदि क्रियाएँ की।^{१२}

विवेक के अभाव में

भगवान् श्री रूपभदेव अमरुत खनने के पञ्चान् मन्वष्ट मीनवृत्ती बनकर एकान्त-शान्त स्थान में ध्यानस्थ होकर रहने लगे।^{१३} जिनमेंन के अनुसार उन्होंने छह महीने का अनुष्ठान ब्रह्म अगोकार किया। श्वेताम्बर साहित्य में ऐसा स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध नहीं होता। वहाँ भिक्षा के सम्बन्ध में जो विवरण मिलना है, वह इस प्रकार है—घोर

(८) बहू महस्रगणा मृषा प्राप्ताजिगृन्तय ।

गुरोर्मतममानानां स्वामिभक्त्यैव तैरयम् ॥

यदस्मै श्रित्यै नर्थं तदस्मभ्य विषयम् ।

इति प्रसन्नदीक्षारणे पैवन इत्यर्थात्तु न ॥

—महापुराण पत्र १७ इत्या० १०१०-१०१३ पृ० १८१

१३६ (ख) विषयि १।२।७८ में ८० प० ७० ।

१३६ बढरो साहस्यीयो, लोम काऊण अणया बव ।

अ एत जहा काही त सह अष्टवि ताक्षमा ॥

—आमदक निरुक्ति गा० ३३७

१३७ (ग) जीव ए तस्त भगवतस्त कल्पइ पदिरने ।

—अष्टू० प्र० २ वधस्कार गू० १६

(घ) अथ काय समुत्पद्य सपोयोगे समाहित ।

वाचयमत्वमास्थाय तस्यो विस्वेष्टं विमुक्तये ॥

यम्मासान्नाम घोर प्रतिज्ञाय महाभुक्ति ।

मोर्षकाम्बुनिस्छान्तर्वह्निष्करणविक्रिय ॥

—महापुराण १८।१-२ पृ० ३६७

(ग) अष्टान्यमुक्तवधिगिषाचोन्माद्यकवदवधूत वेपोऽभिभाष्यभाषाऽपि जनानां वृद्धीतमीनप्रवस्तुष्वी वमूव ।

—भागवत १।१।२६ पृ० ५६३

अभिग्रहो का ग्रहण कर अनासक्त बन शिक्षाहेतु ग्रामानुग्राम विचरण करते व १८ पर शिक्षा और उसकी विधि से जनता अनभिज्ञ थी अतः शिक्षा उपलब्ध नहीं होती थी।^{१३} वे बार सहस्र धमण चिरकाल तक यह प्रतीक्षा करते रहे कि भगवान् मोन छोड़कर भूवत् हमारी सुध बुध तने सुख सुविधा का प्रयत्न करगे पर भगवान् आत्मस्थ रहे क्रुद्ध नहीं बोल। वे द्रव्यविगधारी अमण भूख-प्यास से सत्रस्त हो सम्राट भरत के भय से^{१४} पुन गृहस्थ न बनकर वस्त्रधारी ठापस प्राधि हो गये।^{१५} वस्तुतः विवेक के अभाव में साधक साधना से पर्यव्रष्ट हो जाता है।

साधक जीवन

भगवान् श्री श्रृणुमन्वेव धम्मज्ञान चित्त से, अव्यथित मन से शिक्षा के लिए नगरो व ग्रामो मे परिभ्रमण करते। आबुक्त मानव

१३८ उसमो वरमसभगई धितूज अभिम्मह परमचोर।

भोसदुधसवेहो मिहरइ वामासुणाम तु ॥

—आवश्यक निमुक्ति गा १३८

१३९ न वि ताव जना जाणइ का भिक्षा करिता व भिक्षवरा ?

—आवश्यक नि गा १३९

(क) अणि भिक्षुस्स अतीसि तो सामितो शे भागतोसि वत्थेहि
भावेहि य हत्थीहि आभरणेहि कत्ताहि व निमन्तेसि।

—आवश्यक जूणि पृ १६२

१४ वरतमज्जया शुद्धमनममुक्ताय, आहारमन्तरेण चासितुं न शक्यते—

—आवश्यक नि० मत व २१६

(क) केण जणो भिक्ष व पापति दाउ तो वे शे कत्तारि सहस्सा
भिक्ष भसक्ता तेण माणेरु धरणि व वचनन्ति भरहस्स
व अएण।

—आवश्यक जूणि पृ १६२

१४१ वे भिक्षवतवमाणा वणम के तावता जाता।

—आवश्यक नि गा १४१

निमित्त किया है । भाग्यवत का प्रगुन वर्मान धर्मग भगवान् महावीर के अनार्थ देशो मे विहरण के समान है ।^{१५५}

विशिष्ट लाभ

एक वा पुर्ण हुआ । कुञ्जनपदीय गजपुर के अधिपति बाहुवली के तीव्र एण गोमप्रभ राजा के पुत्र श्रंयाम न रक्षन् देखा कि गुमेर पत्रन प्र्याम वर्ण का हो गया है । उन भने प्रमृत्त जन्म मे अभिगिक्त कर पुन चमकाया ।^{१५६} नगरश्रेष्ठी मुमुक्षु ने उमी गति मे स्वप्न देखा कि सूर्य की हजार फिरण गपने -वान म चलित हो रही थी कि श्रंयाम न उन रश्मियो को पुन सूर्य मे मस्यापित कर दिया ।^{१५७} राजा

१५४ तुलना दीजिय—आचार्यक प्रथम अत० अध्या० ६ उद् ० ३ १ ।

१५५ पदमन्त्रो य ररिग मन्त्रोमदमन्त्रो विरश्चिक्क गजपुर गया, तरग भग्गम् गुत्ता भग्गमा, जल भवति बाहुवलिगुत्ता गुतो गोमण्णो गेयगो य, ते य शस्त्रि जया णमग्गमद्वी य गुमिग पावन्ति ता रत्ताण, गमागता य निमिन्ति मामग्ग मगीने वरति, गयगा-गुणर अज्ज गया ज गुमिग्गे दिट्ठ-मेग रिग चमिका, उहागता मिचायमाणभा गया य अमवाग्गेण अभिगिस्ता माभारिगो जाला पडिगुत्तो मडिठि ।

-आरक्ष्यक वृषि जिन० पृ० १६०-१६३

(ग) दृष्टव्यया गजपुर नाम नगर, तत्र बाहुवलिगुत्ता गोमण्णो गया, तरग गुतो भग्गमा जुवगाया, या गुमिग्गे मद्ग पद्ग मामग्गय पावड, ततो अग्गेण अमक्कल्लेण अभिगिस्तो

करने के लिए अभ्यसना करते पर कोई भी विधिवत् भिक्षा न देता । भगवान् उन वस्तुओं को बिना ग्रहण किये जब उलटे परो लौट जाते तो वे नहीं समझ पाते कि भगवान् को किस वस्तु की आवश्यकता है ?

धीमदभागवतकार ने भगवान् श्री ऋषभदेव को धमरा वनने के पश्चात् यज्ञ व्यक्तियों ने जो वारुण कण्ट प्रदान किया उसका उध्व विष उपस्थित किया है^{१४३} पर वसा वणम जन साहित्य में नहीं है । जन साहित्य के परिशीलन से यह भी ज्ञात होता है कि उस युग का मानक इतना ऊँच प्रकृति का नहीं था जितना भागवतकार ने

कोऽप्यवाहोन्दि सञ्ज स्नायीय वसन जलम् ।
 तैल पिप्यातकश्चेति स्नाहि स्वामिन् प्रसीद न ॥
 कोऽप्युधे स्वोपयोगिन स्वामिन् । मम कृतार्थम् ।
 जातजन्वनकम् रक्तसूरीवक्षकश्याम् ॥
 कोऽप्युवाच जगद्गत् । रत्नासङ्कुरयामि न ।
 स्वाङ्गाभिरोपणात् स्वामिन्नसङ्कुर यवा कुर्व ॥
 एव ग्यज्ञपवन् कोऽपि गृहे समुपनिवस्य मे ।
 स्वामिन्नङ्गानुकुसानि कुक्कुसानि पवित्रय ॥
 कश्चिदप्यव्यक्तोदेव देव । देवाङ्गभोपमाम् ।
 प्रभो । गृहाण न कन्या बन्वा स्मस्त्वस्समागमात् ॥
 कोऽप्युधे पादपारेण व्रीह्याऽपि कृतेन किम् ? ।
 इममारोह सत्ताम कुञ्जर राजकुञ्जर । ॥

—त्रिपटि १।३।२५१-२५५

१४३ तत्र तत्र पुराणान्तरखेटवाटसर्वाट विविद-अजघोषसार्धगिरिबना
 श्वमादिष्वनुपवनवनिपसाद परिभूयमानो भक्षिकामिरिष्य घनवजस्तर्ज
 ताडनावमेहनप्रीवनप्राक्कल्लुङ्गज प्रक्षपपुतिनात्तुक्कत स्तुवविगणयन्नेष
 सत्सस्वान एतस्मिन् देहोपमसखे सद्यदेत उग्रयानुमवस्वरूपेण स्ने
 महिमावस्थानेनासमारोपिताहममाविमानत्वादविसिद्धितमना पृथिवी
 मेवचर परिलभाय ।

—भागवत ५।१५।३ १५६४

सोमप्रभ ने स्वप्न देखा कि एक महान् पुरुष शत्रुघ्न से युद्ध कर रहा है शत्रुघ्न ने उसे सहायता प्रदान की जिससे शत्रु का वल नष्ट हो गया।^{१५५} प्रातः होने पर सभी स्वप्न के सम्बन्ध में चिन्तन मनन करने लगे। चिन्तन का नवनीत निकला कि अवश्य ही शत्रुघ्न का विशिष्ट लाभ होने वाला है।^{१५६}

(ब) नगरसेट्टी मुकुडी नाम सो मुमिण पासइ मूरस स्मिन्म
अमातो बलित नगरि सेज्जसेन हुक्कुत्त ततो सो सूर
अहिमवरनेमम्यओ जातो ।

—आवश्यक मल वृ ५० २१७-२१८

(ग) त्रिपट्टि १।३।२४६-२४७ ।

नोट—आवश्यक कृति में जो स्वप्न नगरसेट्टी का दिया है वह आवश्यक हारिभद्रोपावृत्ति आवश्यक मलयगिरि वृत्ति और त्रिपट्टिछायाका पुरष चरित्र ने राजा सोमप्रभ का दिया है और सोमप्रभ का स्वप्न नगर सेट्टी का दिया है ।

—लेखक

(घ) मेट्टी भजनी—सुबह १ मया विट्ट—अज्ज किल कोऽपि
पुरिसो महप्पमाओ महत्ता रिउबणण सह जुम्मत्तो विट्ठो
तो सेज्जम सामा म स सहाओ जातो ततो अणेण परावित
वरवत्त एम इट्ट म मि पटिच्चओ ।

—आवश्यक कृति १३३

१४७ (ग) राजा एको पुरिसो महप्पमाओ महत्ता रिउबणण सह
जुम्मत्तो विट्ठो ।

—आवश्यक हारिभद्रोपा वृत्ति ५ १४६

(क) राजा मुमिण एको पुरिसो महप्पमाओ महत्ता रिउबलेण
जुम्मत्तो विट्ठो मज्जेण माहज्ज विप्पु ततो तेण तम्बल
अण नि ।

—आवश्यक मल वृत्ति ५ २१८।१

(ग) त्रिपट्टि १।३।२४८

१४८ कुमारस्य महत्तो कोऽपि भावो भविस्सइ ति ।

—आवश्यक मल वृ ५ २१८।१

अक्षय तृतीया

भगवान् श्री ऋषभदेव उसी दिन विचरमा करने हुए गजपुर पधारे। चिन्माल के पश्चात् भगवान् को निहार कर पीरजन प्रमुदित हुए। श्रेयास भी अत्यधिक आह्लादित हुआ। भगवान् परिभ्रमण करते हुए श्रेयाम के यहाँ पधारे।^{१६८} भगवान् के दशन श्रीर भगवद्रूप के चिन्तन में श्रेयाम को पूर्वभव की स्मृति उद्बुद्ध हुई।^{१६९} स्वर्ग का मही तथ्य परिज्ञात हुआ। उमने प्रेमपरिपूरित करो से ताजा माये हुए दशरु र्ग के कलजों को ग्रहण कर भगवान् के कर कमलों में रस प्रदान किया।^{१७०} उस प्रकार भगवान् श्री ऋषभदेव को

१६९. भगवति अञ्जाउमो गरुडरूपमर्णन अञ्जाओ मेधसभयधमञ्जता ।

—आव० म० ७० २१८

१७० जाद्वरगण जाय -

—आन० म० ७० २१८

(ग) मध्मेध भगवद्रूप श्रेयाञ्चातिस्मरोऽभवत् ।

—महापुरुष जिन० ७८।२०।६५२

१७१ (क) गजपुर गजधम श्रेयस्मदाग गजुहार गीठ कुङ्कुमा ।

—शाय० नियुक्ति० गा० १४५

(द) उमभग्म उ पारधम

अम्बुग्मा अग्नि सागनाहम् ।

—आन० गि० गा० १४१

(ग) उमभग्म पदमाभिमता,

गोवग्मा अग्नि नोण्णाहम् ।

—समवायान

(घ) गतो रिज्ञातनिर्दामिधादानविऽ ग तु ।
 मृगता रूपनीयोऽय म्म दत्तपरद विभुम् ।
 प्रमुग्धपञ्जगीहृत् पाणिपात्रम राग्मन् ।
 उत्तिप्यात्तिप्य गाऽपीधुरसकुम्भानलोऽयत् ॥
 भूयानगि म्म पाणिपात्रे भगवता मयी ।
 श्रेयामरय तु हृदये ममुनं हि मुदस्तदा ॥

एक सम्बत्सर के पश्चात् भिक्षा प्राप्त हुई^{१२२} और सब प्रथम इसरस का पान करने के कारण वे काश्यप के नाम से भी विद्युत हुए।^{१२३}

स्थानो नु स्वम्भितोन्वासीह व्योम्नि जगन्निखो रस ।
अञ्जनी स्वामिनोऽचिन्त्यप्रभावा प्रथमं सत्तु ॥

ततो भयवता तेन रसेनाऽकारि वारणम् ।
सुरासुरनुषा मेघ पुनस्तद्दर्शनामृतं ॥

—मिपटि० १। १२२१-१२४

(२) अयम् सोमप्रभेनाया सदमीयत्या च सावरम् ।
रसमिनोरहात प्राप्नुमुत्तानीकृतपाणय ॥

—महापुराण श्रिम० १ ०।१०।४५४

(३) एषति स चञ्चलीचाटु सित्पनराध चञ्चलीस पद्ममिक्ता
दामारो होत्वा स बहो सिञ्जस ।

—समवाधाङ्ग

१५२ सचञ्चलेन भिक्षा लब्धा
उत्तमेन शोभनाहेन ।
हेतेहि वीर्यवित्त
लब्ध्वा पद्ममिक्ताञ्चो ॥

—भावस्थक निरुक्ति पा० १४२

(क) सचञ्चलेन भिक्षा लब्धा
उत्तमेन शोभनाहेन ।

—समवाधाङ्ग

१५३ कास—उञ्जु तस्तं विक्रयो—काश्य रस सो कश्य पाणु सो
कासयो उत्तम स्थानी ।

—दशककालिक—अगस्त्यासह पूर्णि

(ख) कासो याम इन्नु जगन्ना जग्हा स इन्नु पिबति तेन
काश्यपा जग्मिधीवन्ते ।

—दशककालिक—विजयदास ज्ञानि पृ० १३२

(ग) पुष्पना य जगवतो इन्धुरस पिबिताइया तेन गौर कासक क्षि ।

—भावस्थक ज्ञानि विजयदास पृ० १५२

आचार्य जिनसेन के शब्दों में काश्य तेज को कहते हैं। भगवान् श्री ऋषभदेव उस तेज के रक्षक थे अतः काश्यप कहलाये।^{१०४}

प्रस्तुत अवसरपिणी काल में सर्व प्रथम वैशाख शुक्ला तृतीया को श्रेयास ने इक्षु रस का दान दिया अतः वह तृतीया इक्षु-तृतीया या अक्षय तृतीया पर्व के रूप में प्रसिद्ध हुई।^{१०५} दान से वह तिथि भी अक्षय हो गई।



(घ) वर्षाणि वृषभो ज्ञायान्,
पुनराद्य प्रजापति ।
ऐष्वाकु [क] काश्यपो शृणा,
गौतमो नाभिजोऽग्रज ॥

—वनञ्जय नाममाला ११४ पृ० ५७

१५४ काश्यमिच्छुष्वते तेज काश्यपस्तस्य पासनात् ।

—महापुराण २६६।१६।३७०

१५५ राघवकुलतृतीयाया दानमासीत् तदक्षयम् ।
पर्वाक्षयतृतीयेति, ततोऽद्यापि प्रवर्तते ॥
श्रेयासोपश्रमवनी दानधर्मं प्रवृत्तवान् ।
स्वाम्युपश्रमिवाऽशेषश्चवहारमयक्रम ॥

—विषण्डि० १।३।३०१-३०२

(ख) वैशाख सुदि तृतीयारूप पर्वत्वेन मान्य जाता ।

—कल्पलता सम० पृ० २०६।१

(ग) तद्दिन लोके अक्षयतृतीया जाता ।

—कल्पद्रुम कलिका पृ० १४६

(घ) वैशाखमासे राघेन्द्र ! शुक्लपक्षे तृतीयका ।
अक्षय सा तिथि प्रोक्ता, कुत्तिका रोहिणीयुता ॥

तृतीय अध्याय

तीर्थंकर जीवन



अरिहन्त के पद पर

एक हजार वर्ष तक भी ऋषभदेव शरीर से ममत्व रहित होकर वासनाभी का परित्याग कर, धात्म-भाराधना संयम साधना और मनोमर्षन करते रहे।^{१०२} जब भगवान् अष्टम तप की साधना करते हुए पुरिमताल नगर के बाहर सफटमुख उद्यान में गडबुक्ष के नीचे

११६ उसने यह कहा किस्तिए एव वासवहस्त
निष्पन्न बोसट्टुकामे चियत्तहे जाण अप्पाए
भावमाणस्स एकं धानसहस्सं विह्वरत्त ॥

—कल्पसूत्र सू० ११६ प ५५ पुष्प

(८) ऐसा भयम वासावासमग्ग हेमन्तगिम्हासु नामे एगराईए
मगरे पवराईए बवगवहास-सोप-जरह रइ भय-परितास
गिम्हमे निरहकारे सहुत्तए बबने वासी सत्त्वण अहुत्तु चदणाणु
सेवेण भरत्त सेट्टु मि कचवम्मि अमने इहलोए परलोए
अपविचत्त जीविअ भरत्ते निरत्तकसे सत्तारपारणाभी
कम्मसचणिग्घावणद्धाए अम्भुद्धिए विहरह । तत्त ए
अमज्जन्ता एण्ण विहारेण विहरमाणस्स एमे वासवहस्त
विह्वरन्ते ।

—जम्बूद्वीप सू ४ - ४१ पु ८४ अमो

तजो ए अ स हेमन्तास अउत्तमे माते सत्तमे पक्खे कणुणवहुत्ते
उत्त ए अम्भुववहुत्तस्स एक्कारसीपक्खेण पुष्पह्वावसमवसि

ध्यान-मुद्रा में अवस्थित थे। फाल्गुन कृष्ण अ्यारस का दिन था, पूर्वाह्न का समय था, आत्म-मथन चरम सीमा पर पहुँचा। आत्मा पर से घन-घाति कर्मों का आवरण हटा, भगवान् को केवल ज्ञान और केवल दर्शन का अपूर्व आलोक प्राप्त हुआ। जैनगमों में जिसे केवल

पुरिमत्तास्स नयरस्स बहिया सगढमुहसि उज्जाणसि
नगोहवरपायवस्स जहे अट्टमेण भत्तेण अपाणएण
आमटाहि नक्खत्तेण जोगमुवाणएण भाणतरियाए
अट्टमाणस्स अण्वे जाव जाणभाणे पासमाणे विहरइ ।

—कल्पसूत्र० सू० १६६ पृ० ५८ पुण्य०

- (ख) तित्थयराण पढमो उअभसिरी विहरिओ निहवसण ।
अट्टाजओ नगवरो अग्गा भूमी जिणवरस्स ॥
छउमत्थप्परिआओ वाससहस्स तओ पुरिमत्तजे ।
निग्गोहस्स य हिट्ठा उप्पन्न केवल नारण ॥
फग्गुणवहुले इमकारसीइ जह अट्टमेण भरोण ।
उप्पसम्मि अण्वे महव्वया पव पन्नवए ॥

—आवश्यक नियुक्ति गा० ३३८ से ३४०

- (ग) फग्गुणवहुलेअकारमि उत्तग्माढाहि नाणमुअभस्स ।

—आवश्यक नि० गा० २६३

- (घ) अय व्रताम् सहस्राब्द्या, फाल्गुनैकादशीविने ।
कृष्णे तथोत्तरापादास्थिते चन्द्रे दिवापुरे ॥
उत्पेदे केवलज्ञान विकालविषय विभो ।
हस्तस्थितमिवाऽऽप, दर्शयद् भुवत्प्रथम् ॥ १३।५।१५

—विषष्टि०

- (ङ) जम्बूद्वीप प्रशप्ति० पृ० ८५ अमो० —महापुराण २४।६।५७३

- (च) समवायाङ्ग १५७ गा० ३३—अत्र प्राणिघातकम् ?

- (छ) लोक प्रकाश ३२, ५५ स्वानादिवेश स ।

- (ज) फाल्गुने मासि तस्मिन् श्रेयोनुवन्धि यत् ।
उत्तरापादस्थे

इ वनेवा प्राणमकल्पिकी ॥

—महापुराण जिन० २४।८।१७३

चरन् रत्न या पुन रत्न तो इस लोक व जीवा का ही सुख प्रदान करने वाल है किन्तु इस लोक और परलोक दोनों में ही जीवन को सुखी बनाने वाला भगवान का दर्शन ही है^{१५} अतः मुझे मधुप्रथम भगवान् श्री ऋषभदेव के दर्शन व चरण स्पर्श करना चाहिए।^{१६}

मां भवेद्यो की मतिः

सञ्जाद भरत भगवान् के दर्शन हेतु सपरिव्रज प्रस्थित हुए। मां भवेद्यो भी अपने लाडले पुत्र के दर्शन हेतु चिरकाल से छटपटा रही थी प्यारे पुत्र के विमोक्ष से वह व्यथित थी। उसके कारण कष्ट की कल्पना करके वह कलप रही थी। प्रतिफल-प्रतिक्षण लाडले लाल की स्मृति से उसके नेत्रों में आँसू बरस रहे थे।^{१७} जब उसने सुना कि उसका प्यारा लाल विनीता के जाग में आया है तो वह भी भरत के साथ हस्ती पर भागूड होकर चल पड़ी। भरत के विराट् बभ्रव को देखकर उसने कहा—बेटा भरत! एक दिन मेरा प्यारा ऋषभ भी इसी प्रकार राज्यधी का उपभोग करता था पर इस समय वह क्षुधा पिपासा से पीडित होकर कष्टों को सहन करता हुआ विचरता है। पुत्र प्रेम से भोजन छलछला आई। भरत के द्वारा तीर्थङ्करो की दिव्य विभूति का गम्भीर प्रस्तुत करने पर भी उसे सन्तोष नहीं हो रहा था।^{१८} किन्तु समवसरण के क्षणिक

१५५ तायमि पूर्य चक पूर्य पूर्यचारिहो तावो ।

इमाश्च तु चक परलोचसुतावहो तावो ।

—वाचस्पक नियुक्ति भा १४५

१५६ निश्चिन्नावति रावेन्द्रो बुभुवनमासि ।

—महापुराण २४।१।५७३

१५७ निपटि० पर्व १ अ ४ पृ १२४।२५

१५८ भगवतो य माता भवति भवत्स एवमविमूक्षितं बहूँ—मम पुता एव धेय भगवो ह्यस्ति । तादे सखो भगवतो विमूक्षितं वपति सा य पतिपति तादे भवत्येव भवति—एहि वा ते भगवतो विमूक्षितं

पहुँचते ही श्री आत्मदेव को ज्यों ही समवमग्ग म उन्नी हाग अचिन देवा स्यों ही चिन्तन का प्रवाह बढाया । आर्त ध्यान में धुक्न ध्यान में लीन हुई । ध्यान का उत्कर्ष बढ़ा, मोह का बन्धन सर्वांशत टूटा । वह ज्ञानावग्ग, दर्शनावग्ग और अन्नराय का नाट कर केवल ज्ञान, स्वतः दर्शन की धारिका बन गई^{१०} और उन्नी रागु जेप अर्मा को भी नाट कर हस्ती पर आसुह ही मिट बुट और मुक्त हो गई ।^{११}

अस्मिन्, अदि अग्निद्या मम मग्गमभागेण्वि अस्मि ति, ताड अतिव्यपेण भोति ।

—आवश्यक धूर्ति—(अन० पृ० १५१)

(क) मम मुत्तस्ता अरिती रज्जसिरी आगि रापय गा वृहावितागापरि-
गदी मग्गदी, हिउउत्ति उत्तरय अरियाइया भग्गमग्ग सिक्कमग्गिपू-
वन्न तग्गमग्गि न पत्तिजिक्कया, पुत्तमोगण य से किम अग्गमग्ग
वक्कन्तु काम अग्गीए

—आवश्यक समय० मुक्ति० पृ० २०६

१५६ अगदता य अत्तादच्छता वेक्कतीण चर केवलमाण उत्पन्न,

—आव० धूर्ति० पृ० १५१

(ग) ततो तीण भगवदा छत्तादच्छत पागतीए रेव केवलमुत्पण्ण—

—आव० मत्त० पृ० २२६

(ग) साऽपश्यत् तीर्थरुस्तधमो भूतारतिषयान्विताय,
तस्यास्तद्वृत्तानन्दोत्तमवत्त्वमजायत ॥
साऽपश्यत् क्षणिकव्यभिचयपुनःकरणक्रमात् ।
क्षीणाष्टकर्म भूतपदं, केवलज्ञानमासायत् ॥

—त्रिपष्टि० १।३।२२८-५२६

१७०. त एवम् य ए जायु एह सिद्धा, देवेहि य से पूया कता ।

—आवश्यक धूर्ति० अन्त० पृ० १५१

(स) करिस्सन्धाविस्सुव स्वामिनी मरदेव्यय ।
अत्तहत्तेजसिस्सेन, अग्गेदे पदमव्ययम् ॥

—त्रिपष्टि० १।३।५३०

कितने ही आचार्यों का यह अभिमत है कि भगवान् के शब्द कणकुहरो में गिरने से उन्हें आत्मज्ञान हुआ और वे मुक्त हो गई ।^१ प्रस्तुत अवतारिणी में सर्वप्रथम केवलज्ञान श्री शृणुभदेव को हुआ और मोक्ष भगवती माता को ।^२

आचार्य जिनसेन ने श्रीमुक्ति न मानने के कारण ही प्रस्तुत चरित्र का उल्लेख नहीं किया है ।

धर्मविवर्तनी

जिन वन के पश्चात् भगवान् श्री शृणुभदेव स्वयं कृतकृत्य हो चुके थे । वे चाहते तो एकान्त शास्त्र स्थान में अपना बौद्ध जीवन व्यतीत करते पर वे महापुरुष थे । उन्होंने समस्त प्राणियों की रक्षाकथ दया के विभिन्न उद्देश्य से प्रवचन किया ।^३ एतदर्थ ही भगवान् श्री महावीर ने अपने अन्तिम प्रवचन में श्री शृणुभदेव का धर्म का मुक्त कहा है ।^४ और ब्रह्माण्ड पुराण में भी श्री शृणुभदेव

१७१ अथ श्रुति—अथवा भगवतो भगवद्वचनं सुखीय तत्काम य तीय
सुखमाचय ततो सिद्धा ।

—आवश्यक मतः पृ २२६

१७२ भव्य भवस्त देहो त
भगवतीय पद्मसिद्धोति ।

—आवश्यक निरुक्ति

(क) पद्मसिद्धोति काकलु श्रीरोदे द्वा ।

—आवश्यक पूर्णि प १८१

(ग) एतस्यायवसिद्ध्या सिद्धोऽसी प्रथमस्तत ।

सकृत् तदपु श्रीरत्नोत्थी नित्योऽयम् ॥

—निरुक्ति १।३।५३१

१७३ सम्भजन श्रीवत्सलपदमद्वयाय धारयतु भगवता सुकृत्यम् ।

—अस्मभ्यांकरण सम्भरद्वार ।

१७४ धर्माणु कासवो मुह ।

—उत्तराध्यायन पा० १६ . . .

को दस प्रकार के धर्म का प्रवर्तक माना है।^{१००} भाग्यतकार ने उनका सरतार ही मोक्षधर्म का उपदेश देने के लिए माना है।^{१०१}

भारतीय साहित्य में फागुन कृष्ण एकादशी का दिन स्वर्गाक्षरो में उद्धृष्ट है जिग दिन नव्य प्रथम भगवान् का व्याव्यात्मिक प्रवचन भावुक भक्तों को श्रवण करने को प्राप्त हुआ।^{१०२} भगवान् ने अहिंसा, गत्य, गस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की चारों सीमाओं परते हुए मानवजीवन के लक्ष्य पर प्रकाश डालते हुए कहा— जीवन का लक्ष्य भोग नहीं, त्याग है, राग नहीं, वैराग्य है, वासना नहीं राधना है। इस प्रकार भगवान् के श्रव्यान्म रग से छत्रच्छाया में हुए प्रवचन को श्रवण कर रामाद् भरत के पाँचसी पुत्र न रातमी पीरो ने तथा 'ब्राह्मी' आदि ने प्रश्रया ग्रहण की।^{१०३}

एह वि ह्यराकुलमनोभजन नाभिगुणेन मरुत्वा नन्दनन म॥११॥
श्रुतभेद दश प्रकारे धर्म स्वयमेव धीराः ।

— ब्रह्माण्डपुराण

सगहृषादिरेवास गोक्षमगधिवक्षसा ।

— भागवत ११।२।१६।गु० ७११

फागुणचतुर्दश दशकारसीह बह ब्रह्मम भरोण ।

उत्पन्न मि भणते महत्त्वया पद्य पद्यवण ॥

—आवश्यक नियुक्ति गा० ३४०

(ख) सत्य समोदरतो भगव एवज्ञादीश्व वम्म परिकहेति ।

—आवश्यक धूर्ति, पृ० १२२

१०४ सद्य मरुदेवीद निम्नो, कहण पव्वज्ज उरभतेवग्ग ।

वभीमरीद्विगया शुद्धिओरोह गुद्धिगया ॥

पत्त य पुत्तगयाद भग्गुरत्त य उत्त नत्तुअसयाद ।

सयराह पव्वइआ समि कुमारा समारारो ॥

—आवश्यक नि० गा० २४४-२४५

सम्राट भरत आदि ने श्रावक वृत ग्रहण किये और सुन्दरी ने भी ।^{१०८}

महापुराणकार ने भरत के स्थान पर श्रावक का नाम धृतकीर्ति दिया है और सुन्दरी के स्थान पर श्राविका का नाम प्रियवता दिया है ।^१ पर श्वेताम्बर ग्रन्थों में ये नाम वहीं पर भी नहीं आये हैं । इस प्रकार श्रमण श्रमणी श्रावक श्राविका रूप चतुर्विध तीर्थ की संस्थापना कर वे सप्तप्रथम तीर्थङ्कर बने ।

श्रमणों के लिए पाच महाव्रतों^{१०९} का और गृहस्थों के लिए

(क) तत्त्वं तसमसेनो वाय भरहस्त रक्षा पुता सा धम्म सत्तण
प वसतो तेन तिहि पुब्बाहि चाइसपुब्बाहि महिताइ—उप्पन्न
विगतो पुन तत्त्वं वप्पीवि पप्पइया ।

—आवश्यक शूर्णि पृ १

(ग) महापुराण पृ २४ श्लोक १७३ पृ ३३१

१७३ (क) भरहो साववो सुन्दरीए न विन्न पप्पइउ मम इत्थि/एए
एसत्ति सा साविगा एस चउम्भिहो समणसधो ।

—आवश्यक शूर्णि पृ १५२

(ख) भरहो साववो वावो सुन्दरी पप्पयन्ती भरहोय इत्थी
अस्सिइत्ति निस्सो साविगा वाया एस चउम्भिहो समणसधो ।

—आवश्यक मल पृ २३३

१८ अ सकीर्तिर्महाप्राज्ञो ब्रह्मिष्ठोऽसकलत ।

देवसयमिनामासीद्धीरेयो ब्रह्मेष्टिनाम् ॥

उपातागुपता धीरा प्रयत्नात्मा प्रियवता ।

स्त्रीषा विमुक्तवृत्तीना नमूनाय सरी सती ॥

—महापुराण विनसेन २४।१७७-१७८ पृ ३३२

१८१ अहिसत्त्वश्च न जलेन च

उतो य नम्य च जपरिमह च ।

एडिवम्बिवा पच यहुववाइ

चरिज्ज धम्म विचदेतिव विज्ज ॥

—उत्तराध्ययन २१।२२

वे मोक्षमार्ग के प्रवर्तक अवतार है।^{१११} जैन साहित्य में जिस ऋषभसेन को ज्येष्ठ गणधर कहा है, सम्भव है, वैदिक साहित्य में उसे ही मानमपुत्र और ज्येष्ठपुत्र अथर्वन कहा हो। उन्हें ही भगवान् ने समस्त विद्याओं में प्रधान ब्रह्मविद्या देकर लोक में अपना उत्तराधिकारी बनाया है।^{११२}

आद्य परिव्राजक मरोचि

भगवान् के केवल ज्ञान की तथा तीर्थ-प्रवर्तन की सूचना प्राप्त होते ही, भगवान् के साथ जिन चार सहज व्यक्तियों ने प्रव्रज्या ग्रहण की थी और जो क्षुधा पिपासा से पीड़ित होकर तापस आदि हो गये थे, उन तापसों में से कच्छ महाकच्छ को छोड़कर सभी भगवान् के पास आते हैं और आर्हती प्रव्रज्या ग्रहण करते हैं।^{११३}

१११ तमाहुर्वासुदेवास मोक्षधमविनसया ।

अथतीर्थं सुतपात तस्यासीद् ब्रह्मपारमम् ॥

—श्रीमद्भागवत ११।२।१६ गीता प्रेस० गो० प्र० संस्करण

ब्रह्मा देवानां प्रथमं सन्मयूषं विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य शोभता ।

म ब्रह्मविद्यां सचविद्याप्रतिष्ठां मयैव ज्येष्ठपुत्राय प्राह ।

—मुण्डकोपनिषद् १।१

(ख) स्वर्तितनयाय गात विद्वत् ।

१२

—ऋग्वेद १, ६९, ४

१३ ते य तापसा भगवन्तो नाशमुप्सवुः तं कच्छमुकच्छवज्जा भगवन्तो
सगासमागतूँ मवणवतिवाणमतरजोदसियवेणाणियदेवाभिरु परिस
१८ ददुःण भगवन्तो सगामे पञ्चदया ।

—वाच० नि० मत्त० वृ० पृ० २३०।१

(ख) ते च कच्छमहाकच्छद्वर्जं राधन्यतापसा ।

मागत्य स्वामिनं पार्त्वे, दीक्षामाददिरं मुदा ॥

त्रिपष्टि १।३।६५४ पृ० ८६

आवश्यकनियुक्ति आवश्यक चूर्णि आवश्यक मलयगिरीय
वत्ति ^{११५} आवश्यक हारिभद्रीया वत्ति ^१ शिपटिशलाका पुरुष
चरित्र ^{११} कल्पलता ^{११} कल्पद्रुम कस्तिका ^{१११} महावीरचरित्र ^१ प्रभृति
श्वेताम्बर ग्रन्थो के अनुसार भगवान् के प्रथम प्रवचन को श्रवण कर
सन्नाह भवन का पुत्र मरीचि भगवान् अपमदेव के पास दीक्षित होता

(ग) यऽपि च तापना कच्छ-

महाकच्छविबन्धिता ।

तेऽपि प्रचरिन् दीना

समैव

गामिनोऽन्निक ॥

—वत्पार्थ बोधिनी पृ० १५१

११४ बहुल करिमा ज महिम शैबहि सतिमा मरिह ।

मम्मत्तल्लुब्धी धम्म सोऊव पब्बइवो ॥

—जाव नि गा० ४७

११५ एव समासरणे मरिचिमाइया वज्र कुमाग पब्बइया

—आवश्यक मल कृ पृ ५ १

११६ आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति

११७ आद्य समवसरणे अपमम्बामिन प्रभा ।

पितुभाभादिमि साध मरीचि क्षत्रियो यथी ॥

महिमान प्रभो प्रेक्ष क्रियमाण स वानिभि ।

धम वाक्क्यै सम्मत्त नमोऽस्ते

—

११८ तत्र भगवत्स्य मरीचिप्र

सप्तासवीनायक प्रतिह

११९ तत्र प्रथमदेवनाया धर्म

बीजा

रैव मरीचि

है, तप सयम की विशुद्ध आराधना-साधना करता हुआ^{२०१} एकादश अङ्गो का अध्ययन करता है।^{२०२} पर एक वार वह भीष्म-भीष्म के आतप से प्रताडित होकर साधना के कठोर कटकाकीर्ण महामार्ग से विचलित हो जाता है।^{२०३} उसके अन्तर्मनस में ये विचार-सहरियाँ तरंगित होती हैं कि भेरुपर्वत सृष्टि यह सयम का महान् भार मैं एक मुहूर्त भी सहन करने में असमर्थ हूँ।^{२०४} क्या मुझे पुनः गृहस्थाश्रम स्वीकार करना चाहिए ? नहीं, कदापि नहीं। और मैं सयम का भी विशुद्धता से पालन नहीं कर पाता, अतः मुझे नवीन वेपथूपा का निर्माण करना चाहिए।^{२०५}

श्रमणमस्कृति के श्रमण त्रिदण्ड-मन वचन काय के अनुम व्यापारो से रहित होते हैं, इन्द्रियविजेता होते हैं, पर तो मैं त्रिदण्ड से युक्त हूँ, और अजितेन्द्रिय हूँ, अतः इसके प्रतीक रूप त्रिदण्ड को धारण करूँगा।^{२०६}

२०१ मरिचिवा तामिपासे विहृष्ट तवसज्जमममगो ।

—आवश्यक भाष्य, गा० ३६

१६ २०२ सामाङ्गलमार्गस इकारममा उ भाव अगायो ।

उच्छुतो भक्तिगमो अहिमिज्जो सो गुरुसपासे ॥

—आवश्यक भाष्य० गा० ३७

२०३ अह अन्नया कयाह गिन्हे सण्णेण परिगयसरीरो ।

अण्णायण्ण चहलो इम कुत्तिग विचित्तेइ ॥

—भाव० नि० गा० ३७० मल० वृ० प० २३३।१

१६ २०४ मेतगिरीसममारे न श्रुवि ममत्थो मुहुनमधि वोढु ।

मामन्ना गुणे गुणरहिणो ससारमणुकली ॥

—भाव० नि० गा० ३५१ म० वृ० २३३।२

०५ एवमणुचितयतस्स तस्स निवगा मई समुप्पन्ना ।

तदयो मए उवाओ जाया मे सासथा बुद्धी ॥

—भाव० नि० गा० ३५२

समणा तिदहविरया भगवतो निहुवसकुडवमगा ।

अजिद दिवदस्स उ होउ तिदह मह चिव ॥

—भाव० नि० गा० ३५३ मल० प० २३३

अमरा द्रव्य और भाव से मुण्डित होते हैं सब प्राणातिपात विरमण महाभूत के धारक होते हैं पर मे सिखासहित धुरमुण्डन कराऊँगा और स्थूलप्राणातिपात का विरमण करूँगा ।^{१००}

अमरा यकिचन तथा शील की सौरभ से सुरागित हाते हैं पर म परिग्रहधारी रहूँगा और शील की सौरभ के भभाव मे चन्दनादि की सुगन्ध से सुगन्धित रहूँगा ।^{१०१}

अमरा निर्मोह होने दें पर मे मोह ममता के मरस्वल मे घूम रहा हूँ उनके प्रतीक के रूप मे छत्र धारण करूँगा । अमरा तंगी पर होते हैं पर मे उपातद पशूँगा ।^{१०२}

अमरा जा स्थविर कल्पी हूँ मे श्वेतवस्त्र के धारक हूँ और जिन काली निवस्त्र होते हैं पर मे कषाय से कसुपित ॥ अत काषाय वस्त्र धारण करूँगा ।^{१०३}

(क) त्रिपटि १।६।१५ प १५

१७ सोह विमृष्टा समया उ मह्य सुरेण ससिहा य ।

धुलनपाणिषहात्री वेरमसु मे समया होत ॥

—आव नि गा ३५४ म० पृ २५५।

(ग) अभी मृण्डा शिर केममुञ्चनेप्रियमिजैय ।

अत पुनर्मीन्यामि धुरमुण्डविद्याधर ॥

त्रिपटि १।६।१५ प १५

१८ निष्कन्या मे समया अविचन म म किचल होत ।

शीलसुमया समया मह्य शीघ्र दुग्गमो ॥

—आव निमुक्ति गा ३५५

(ख) त्रिपटि १।६।१५।१५ ११

२० शवपयमोहा समया मोहाद्वलस्य वृत्तय होत ।

मणुवाणहा य समया म म नु उवाहये ॥

—आव निमुक्ति गा० ३५६

(क) त्रिपटि १।६।२ ११५ ११

२१ मुक्तवरा य समया निरवरा म म वातरस्ताह ।

ह तु ह्ये यत्था वरिका मि कनायन्नुसम ॥

—आवय निमुक्ति गा १५७

श्रमण पापनीरु और जीवों की घात करने वाले आरमादि में मुक्त होते हैं। वे गचित्त जल का प्रयोग नहीं करते हैं। पर भी ऐसा नहीं है, अतः ग्यान तथा धीने के लिए परिश्रित जल ग्रहण करेगा।^{११}

इस प्रकार उमने अपनी कल्पना में परिकल्पित परित्याजक-परिश्रान का निर्माण किया^{१२} और भगवान् के गाव ही ग्राम नगर आदि में विचरने लगा।^{१३} भगवान् के श्रमणों में मरीचि की गृथप् वेण-भूपा को निहारकर जन-जन के अन्तर्निग में सुतूहल उत्पन्न होता। लोग जिज्ञासु बनकर उनके पास पहुँचते।^{१४} मरीचि अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा की तेजस्विता में प्रतियाध देकर उन्हें भगवान् के दिग्य बनाता।^{१५}

एक समय राजाद् भरत ने भगवान् श्री ऋषभदेव के समक्ष

(ग) त्रिपटि० १।६।२१।१७०।१

२११ रजतऽरजभील, गुरुजीरगमाउल जलारग ।
गड मग परिमिगम, जवण शलग व विवग व ॥

—आवश्यक नि० मा० ३५८

(ग) त्रिपटि० १।६।२२।१७०।१

२१२ गव गा दयमड विवगमटिगणियम दम त्रन ।

—आर० नि० मा० ३५८

(घ) गुरुद्वारा कल्पितेन मरीचिनामगमन ।

—त्रिपटि १।६।२३।१७१।१

२१३ गामनगमगमद, विवग गो गामिणा गडि ।

—आवश्यक नियुक्ति ३६० प० २३८

२१४ अह त पागडार ददु गुरुद्वारा गुरुद्वारा गम ।

कड जर्ग तो गो विवगमडि तरत परिगुहा ॥

—आवश्यक नियुक्ति मा० ३८८

२१५. गमकडविपत्त उद्विग देद भगवान् गीम ।

—आवश्यक नियुक्ति ३६०

जिज्ञासा प्रस्तुत की—कि प्रभो ! क्या इस परिपद् में ऐसा कोई व्यक्ति है जो आपके सहस्र हो भरत क्षत्र में तीर्थ कर बनेगा ?^{१२१६}

जिज्ञासा का समाधान करते हुए भगवान् न कहा—स्वाध्याय ध्यान से आत्मा को ध्याना हुआ तुम्हारा पुत्र मरीचि परिव्राजक और नामक अन्तिम तीर्थस्नान करेगा । उससे पूर्व वह पातनपुर का अधिपति त्रिपृष्ठ वापुदेव होगा तथा विदेह धर्म की सूका नगरी में त्रियमित्र नामक जनवर्ती होगा । इस प्रकार तीन विशिष्ट उपाधियों को वह एकैला ही प्राप्त करेगा ।^{१२१७}

२१६ पुणरपि न समोचरसे पुच्छीम निशु तु चक्रिषो भरते ।

अप्युद्धो न ह्यारे नित्यवरो को ह्य भरहे ? ॥

—आत्मस्कन्ध निरुक्ति वा १६७

(स) अहं भगवन् नरवरिषो ताम । इमीसित्तिमाह परिषाह ।

अतोऽपि वार्धव होही भरहे वार्षमि नित्यवररो ?

—आत्मस्कन्ध मूलभाष्य वा० ४४ अक्ष ६ पु० २४१

(ग) भव । किमेतन् कोऽपि ह्य पविस्सह सित्यवरलोम ?

—महावीर चरित मुद्रावली वा १२४ अ २५ १८

११७ तस्य मरीचं नामा आन्तरिष्वायणो उच्यते ।

मन्मायज्जालकुलो एतस्य भायह महत्त्वा ॥

ए बाएह त्रिमिन्द्रो एव गौरदेव पुच्छिषो सतो ।

धम्मवरचक्कवट्टी अपच्छिषो वीरमासुति ॥

तथा—आद्यमन् क्षमाराल निविट्ठु नामेव पोअणाहिषई ।

पियमित्तक्कवट्टी भूआह विनेहवासमि ॥

—आत्मस्कन्ध नि वा ४२२ से ४२४ अ २४४

(क) ताहे कतिवकुलिन विरिह एतससठिन भयव ।

ववह चह एत जिणो चरिणो होही तुह सुभोति ॥

एलोच्चिध वामावरनवरसमिद्धस्स आरहहस्स ।

सामी तिमिदुत्तमो पडभो तह वासुदेवाण ॥

इतो महाविदेहे पियमित्तो नाम चक्कवट्टीवि ।

मुयाए वयरीए अविस्सई परमरिद्धिमुभो ।

—महावीर चरित वा ११६ स ११८ प० १८१

भगवान् श्री कृष्णदेव की भविष्य वाणी को श्रवण कर मग्राद् भरत भगवान् को वन्दन कर मरीचि परिव्राजक के पास पहुँचि, श्री भगवान् की भविष्यवाणी को सुनाते हुए उसमें कहा—अयि मरीचि परिव्राजक ! तुम अन्तिम तीर्थद्वार वनोंमें, यत्र मे तुम्हाग अभिनन्दन करता है ।^{१५} तुम वासुदेव व चक्रवर्ती भी बनोने ।^{१६}

यह सुनकर मरीचि के हृत्त श्री के तार भनभन्ता उठे—मैं वासुदेव, चक्रवर्ती और तीर्थद्वार बनूँगा ।^{१७} मैंने पिता चक्रवर्ती है, मेरे पितामह तीर्थद्वार है और मैं अनेका ही तीन पदवियों को धारण करूँगा ।^{१८} मेरा कुल कितना उत्तम है ।

एक दिन मरीचि का स्वास्थ्य बिगड़ गया । मेवा करने वाले के प्रभाव में मरीचि के मानस में ये विचार उद्बुद्ध हुए कि मैंने अनेको को उपदेश देकर भगवान् के शिष्य बनाये, पर याज्ञ में स्वयं सेवा करने वाले में वञ्चित हूँ । अथ व्यवह होने पर मैं स्वयं अपना शिष्य

(ग) निपण्ठि १।६।३०२ स २७८ पृ० १६० ।

२१८ नाशि न ते पारिवर्ज्य वदामि अत्र इमं न ते जन्म ।
ज होहिमि तिर्यगणे अपच्छिमो तेन वदामि ॥

—आव० नि० पा० ४२८ प० २४४

(घ) महावीर चरित पा० १२६ से १२६ प० १६ ।

२१९ जइ वासुदेव पटमो भूवाइ विदेह चक्रवर्तिन ।
चरिमो सिद्धयगस्य होठ अस उतिग्र मज्ज ॥

—आव० नि० पा० ४३१ प० २४५

२२० अहय च दसाराण मिया मे शकवद्विस्तस्य ।
अज्जो तिर्यगराण अहो कुल उत्तम मज्ज ॥

—आव० नि० पा० ४३२।२४५

(च) यथाको वासुदेवाना विदेहेषु च चक्रभृत् ।

अन्त्योऽर्हन् भविताम्भीति पूरुमेतावता यम ॥

पितामहोऽर्हन्मावस्वक्रिणा च पिता भम ।

दशार्द्धाभामह चेति थंष्ट कुलमहो यम ॥

—निपण्ठि० १।६।३८६-३८७

वनाऊँगा ।^{२२१} वह स्वस्थ हुआ । कपिल राजकुमार धर्म की जिज्ञासा से उसके पास आया । उसने आहूती बोधा की प्रेरणा दी । कपिल ने प्रश्न किया आप स्वयं आहुत धर्म का पालन क्यों नहीं करते ? उत्तर में मरीचि ने कहा— मैं उसे पालन करने में भ्रमर्य नहीं हूँ । कपिल ने पुनः प्रश्न किया—क्या आप जिस मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं उसमें धर्म नहीं है इस प्रश्न ने मरीचि के मानस में तूफान पदा कर दिया और उसने कहा— यहाँ पर भी वही है जो जिन धर्म में है ।^{२२२} कपिल उसी का धार्य बना ।

५१ अथवा न ज्ञानं सकृत् साधनोऽप्यसयतस्वाप्तं प्रतिजायति । स धिस्तपति—निष्कितार्था जल्पेने नासक्तस्व कुर्वन्ति नापि ममानां नारयितुं युक्तं तस्मात्कचन प्रतिजानरक दीक्षयामीति ।
—आश्रम मसु वृ ५ २४७।१

(ग) त्रिपटि १।६।२६-३० पृ १२ ।

(ग) महावीर चरितं गुण ६।२६-३२

२२० अपगतदोगस्य च कपिसो नाम राजपुत्रो धम्मबुधपमा तवन्तिकमागत इति कथिते सामुधर्म्ये स बाहू—अथवा मार्गं किमिति भवततवङ्गीकृत ? मरीचिराह—पापेऽहं सोए इतिमे त्यागि विभापा पूववन् कपिलाऽपि कर्मावधानं सामुधर्म्यान्निमित्तं कथंवाह—तथापि किं भवद्दक्षिणं नास्तेव धम्मं इति ? मरीचिरपि प्रचुरकम्मां कथं न तीर्षकरोक्तं प्रतिपन्नने वर मे सहाय सवृत्त इति सञ्चिन्त्याह—कपिला एत्थं पि ति ।

—आनन्धन निमुत्ति मलय वृ ५० २४७।१

(स) मरीचिमायमो बुध स इयुन च किं तव ?

योऽपि सोऽपि न धर्मोऽस्ति निर्धर्मं किं वत्त भवेत् ?

—त्रिपटि १।६।४८

(ग) इविलम वत्त—अथवा । तुम्हें सतिष्ठ एत्थं तद्वाचि अतिथि किं पि विज्जराठालु न वा । विरिहवा मज्झि—मद् । समणधम्मो एव अतिथि इहाचि मयाव ति ।

—महावीर चरितं गुण ५ २२

कपिल जैसे गिष्य को प्राप्तकर उसका उत्साह बढ़ गया। उसने तथा उसके शिष्य कपिल ने योगशास्त्र और सांख्य शास्त्र का प्रवर्तन किया।

मरीचि और कपिल का बखान जैसा जन साहित्य में उद्धृष्ट है वना भागवत आदि बौद्ध साहित्य में नहीं। वहीं जन साहित्य में मरीचि को भरत का पुत्र माना है वहा भागवतकार ने भरत की वंश परम्परा का बखान करते हुए उसे अनक पीडियो क पश्चान् सभ्रातृ का पुत्र बताया है तथा उसकी माँ का नाम उत्कला दिया है।^{१२५}

जन साहित्य में कपिल को राजपुत्र बताया है और बौद्ध साहित्य में उसे कदम ऋषि का पुत्र बताया है। साथ ही उन्हें विष्णु का पाँचवा अवतार भी माना है।^{१२६}

जब कपिल कदम ऋषि के यहाँ धर्म ग्रहण करता है तब ब्रह्मा जी मरीचि आदि मुनियों के साथ कदम के आश्रम में

२२७ (क) स प्राज्ञमावधत्वा मोहादन्तेत्य भूतल ।
स्वयं कृतं सांख्यमतमासूर्यासीनबोधयत् ॥
तदाम्नायादहं सांख्यं प्रवर्तते च वसन्तम् ।
सुखसाध्ये ह्यनुप्याने प्रायो लोकं प्रवर्तते ॥

विपदि १।१।७५-७४

(ख) तदुपशमम्, मागधात्म तत्र च कविलम् ।
येनाय मोहितो लोकं सम्मन्त्रानपराद्धसुख ॥

—भागवत १५।६२।४ ३

२२८ तत उत्कलाया मरीचिर्नरोन्विष्टः ।

—भागवत २।१५।१५।६ ६

२२९ पञ्चम कपिला नाम सिन्धुस कानविष्णुनम् ।

प्रोवाचामुरय सांख्यं तत्त्वज्ञानविनिश्चयम् ॥

—भागवत स्कन्ध १ अ ७ श्लो १ पृ ५६

पहुँचते हैं^{२३१} और यह प्रेरणा देते हैं कि वे अपनी कन्याएँ मरीचि आदि भुनियो को समर्पित करें।^{२३२} वहाँ की प्रेरणा से कर्दम ऋषि ने 'कला' नामक कन्या का मरीचि के साथ पाणिग्रहण करवाया।^{२३३} इस प्रकार स्पष्ट है कि मरीचि कपिल के वहनोई थे। पर प्रश्न है कि भागवतकार ने एक और ऋषभ को आठवाँ अवतार माना है और कपिल को पाँचवाँ और कपिल तथा मरीचि का समय एक ही बताया गया है। श्रीमद्भागवत की दृष्टि से मरीचि भरत की अनेक पीढ़ियों के बाद आते हैं तो पूर्व में होने वाले को आठवाँ अवतार और पश्चान् होने वाले को पाँचवाँ अवतार कैसे माना गया ?

हमारी दृष्टि से भागवत में अवतारों का जो निरूपण किया गया है, वह न श्रमबद्ध है और न सगत ही है।

जैन-साहित्य में मरीचि परिव्राजक के आचारसंहित्य का वर्णन तो है, पर भागवत की तरह उनके विवाह का उल्लेख नहीं है।

वैदिक साहित्य के परिशीलन से यह भी ज्ञात होता है कि मरीचि श्री ऋषभ के अनुयायी थे— ऋग्वेद^{२३४} में काश्यपगोत्री

- २३१ सत्कर्माश्रमपद सरस्वत्या ऋषिदम् ।
स्वयम्भू साकमृषिभिर्मरीच्यादि रम्भयान् ॥
श्रीमद्भागवत ६ अ० २८, श्लो० ९ पृ० ३१५
- २३२ अतस्त्वमृषिमुख्येभ्यो यथाशीलं मरीचि ।
आत्मजा परिदेहाद्य विस्तृणीहि त्वो मुनि ॥
—भागवत ३।२४।१५।३१६
- २३३ गते शतधृती क्षत्त कर्दमस्तेन चोदितः ।
यथोदित स्वदुहित प्रादाद्विष्वम्भे ततः ॥
मरीचये कला प्रादाद्विष्वम्भे यथाशये ।
यदामङ्गिरसेऽप्यञ्जलुवस्त्याम हर्षिभुवम् ॥

मरीचिपुत्र ने अग्निदेव के ऽतीक के रूप में जो ऋषभदेव की स्तुति की है वह हमारे मन्त्रव्यानुसार वही मरीचि है जिनका प्रस्तुत इतिवृत्त से सम्बन्ध है।

सुन्दरी का समय

भगवान् श्री ऋषभ के प्रथम प्रवचन को ध्वस्त कर ही सुन्दरी समय ग्रहण करना चाहती थी। उसने यह भव्य भावना अभिव्यक्त भी की थी किन्तु सम्राट् भरत के द्वारा आज्ञा प्राप्त न होने से वह आविका बनी।^{१४} परन्तु उसके अन्तर्मनस में वैराग्य का पयोधि उछाले मार रहा था वह तन से गृहस्थाश्रम में थी किन्तु उसका मन समय में रम रहा था। पद सण्ड पर विजय वजयन्ती फहराकर और सम्पूर्ण भारतवर्ष को एक अक्षण्ड शासन प्रदान कर जब सम्राट् भरत दीर्घकाल के पश्चात् विनीता सौंदे तब सुन्दरी के कृश तनु को देखकर वे चकित रह गये।^{१५}

२३४ सुन्दरी पञ्चवती मरहेण हत्थोरयस भविस्सद्वासि निवडा साविया जाया ।

—आवश्यक समयविराट् वृत्ति पृ १९६

(क) विमुक्ता बाहुवर्तिनाः निवृत्ता सुन्दरी व्रतम् ।
भरतेन निषिद्धा, आविका प्रथमाऽभवत् ॥

—निषिद्धि प १। स ३। प १५१

(ग) कल्प सुबोधिका टी. पृ ५१२ सारा न ।

(घ) कल्पसता—समय व. सार पृ १७ ।

(ङ) कल्प म कलिका पृ १५१ ।

२३५ एव जाहे बारस भरिस्सद्वासि महारयाजिसेवो वत्तो रायाणो विसम्भिता ताहे निवगवत्ता सारिजमारखो ताहे दाहवति सव्वे जिदलगा एव पविमहिण सुन्दरी दाहता सा पडन्मुत्त सा य जहिबस रडा वेव दाहसमारखा वेव आयवित्ताणि स पासित्ता रट्ठो से कोइ बिदे भवति ।

—आवश्यक वृत्ति

सम्राट् भरत ने सुन्दरी से पूछा—सुन्दरी तुम सयम लना चाहती हो या गृहस्थाथम में रहना चाहती हो ? सुन्दरी ने सयम की भावना अभिव्यक्त की। सम्राट् भरत की आज्ञा से सुन्दरी ने श्री ऋषभदेव की आंगानुवर्तिनी श्राही के पास दीक्षा ली।^{१२} प्रस्तुत प्रसंग पर सहज ही ऋग्वेद के यमी सूक्त की स्मृति हो आती है। भाई यम स भगिनी यमी ने वरण करने की अभ्ययना की पर आता यम भगिनी की बात को स्वीकारता नहीं है। जबकि यहाँ आता की अभ्ययना बहन ठुकराती है। +

प्राचार्य जिनसेन के अभिमतानुसार सुन्दरी ने प्रथम प्रवचन को ध्वरण कर श्राही के साथ ही बीजा ग्रहण की थी।^{१३}

अठानवें आताओं की बीजा

यह बताया जा चुका है कि श्री ऋषभदेव अपने सौ पुत्रों को पृथक् पृथक् राज्य देकर धमरा बने थे। सम्राट् भरत चक्रवर्ती बनना चाहते

तथा नदेव देवन प्र गती मपिभ्यत ।

तत प्रभृष्यन्तो तस्थी रत सयमव हि ॥

—विपदि ११४।७४५-७४६

(क) तेहि सिद्ध गहा अ विमल पारेणि ताह तस्स पयसुराणो जज्जो ।

—आवस्यव जूणि ॥ २ ६

२ ६ मज्जति-अदि तात मज्जति ता पयसु पम्बयतु गह भोगद्वी ता मज्जतु ताहे पाण्डु पत्ति विस्सि पम्बइया ।

—आवस्यवज्जुणि पृ २ ६

(ख) ता म भगिया जह स भनि तो मए सय भोग मु जाहि ण जि तो पम्बवाहिंति । ताहे पाण्डु पत्ति विस्सि जया पम्बइया ।

—आवस्यव सूत्र मय वृत्ति पृ २३१।१

+ रानि जने चिन्तन अ अथमनेव जने लेमना परिवार

—पृ २३६ २ ७ ५ सुमसातजी

२४ सुन्दरी आननिर्वेश ता श्राहीमन्त्रकीजित ।

—महापुराण पय ८ नो १८७ पृ ५६२

थे, अतः पटवण्ट को तो उन्होंने जीत लिया था, पर अभी तक अपने भ्राताओं को अपने अधीन करने के लिए उन्होंने दूत प्रेषित किये ।^{१४} यथानवे भ्राताओं ने मिलकर इस विषय में परस्पर परामर्श किया, परन्तु वे निर्णय पर नहीं पहुँच सके ।^{१५} उस समय भगवान् श्री प्रापभदेव आन्ध्रपद पर्वत पर विचर रहे थे । वे सभी भगवान् के पास पहुँचे ।^{१६} स्थिति का परिच्छेद करते हुए, नम्र निवेदन किया—प्रभो !

२४१ अमया भग्ना तानि भातयाण पत्थवनि, जहा मम रज्ज आयाणत्त,
—आवस्यकपूर्णि, पृ० २०६

(ग) अमया भग्नी तानि भातयाण हूय पट्टवेत्त, जहा-मम रज्ज आयाणत्त ,
—आवस्यक मस०, २३१।१

(घ) प्राहिष्णात्त निगुटार्पान् हूनामनुजगत्तिविम् ।
—महापुराण, जिन० ३४।८६।१७६

२४२ ते भग्गुत्ति-अम्भवि रज्ज ताण्ह दिस्स, सुउभरि, तत्तु ताव ताओ गुच्छिज्जिह्मिस्सि, ज भग्गिस्सि त ठ्ठीहामो,
—आवस्यक मस० वृत्ति० पृ० २३१।१

(ग) ते भग्गुत्ति-अम्भवि रज्ज ताण्ह दिस्स सुउभरि, तत्तु ता ताओ ताग्गुच्छिज्जिह्मिस्सि, ज भग्गिस्सि त ठ्ठीहामो ।
—आवस्यकपूर्णि, पृ० २०६

(घ) प्रत्यक्षो मुग्धमान प्रतपस्वय विप्रहृष्ट ।
न न प्रमाणमिदमर्थं सद्धितोर्लभिमद हि न ॥
साद्य गुप्तादाभा सन्धा न ररिग्गो ययम् ।
न देय मग्गेजेन नादेयगिद्व हिम्मत ॥
—महापुराण, जिन० ३४।६३-६४।१७६

२४३ आवस्यक पूर्णि पृ० २०६ ।

(ख) तेरा समस्त भयव अट्टावयमागओ गिह्रमाणो तत्थ सग्गे समोगगिया कुमार ।
—आवस्यक मस० वृत्ति, पृ० २३१।१

आपके द्वारा प्रदत्त राज्य पर भाई भरत सत्तका रहा है। वह हम से राज्य छीनना चाहता है।^{१२} क्या बिना युद्ध किये हम उसे राज्य दे दें ? यदि हम देते हैं तो उसकी साम्राज्य सिंघा बढ जायेगी और हम पगधीनता के पक मे डूब जायेगे। भगवन् ! क्या निवेदन कर ? भरतेश्वर को स्वयं के राज्य से सन्तोष नहीं हुआ तो उसने अन्य राज्यों को अपने अधीन किया किन्तु उसकी वृष्णा बडवाग्नि की तरह शान्त नहीं हो रही है। वह हमे आह्वान करता है कि या तो तुम मेरी अधीनता स्वीकार करो या युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाओ। आपकी के द्वारा दिये गये राज्य को हम क्लीब की तरह उसे व से प्रपित कर द ? जिसे स्वाभिमान प्रिय नहीं है वही दूसरो की गुलामी करता है। और यदि हम राज्य के लिए अपने ज्येष्ठ भ्राता से युद्ध करते हैं तो भ्रातृ-युद्ध की एक अनुचित परम्परा का धीगृहण हो जाता है अतः आप ही बताए हमे क्या करना चाहिए ^{१३}

(ग) ते वृत्तानमिवायव त वाऽऽपवाचत ।

स्वित्त समवतरणे वृषभस्वादिन ययु ॥

—त्रिपठि १।४।८ व

२४४ ताहे भएति-नु मेडि दिनाति र-वाइ हरति माया ।

—भाव मल वृ पृ २१।

(ख) तदानीं तत्तगाईर्न सविभयं वृषक-वृषक ।

देसराज्यानि दत्तानि मवाह भरतस्य च ॥

तदेव राज्ञीं सन्तुष्टास्तिष्ठामो विष्टपेश्वर ।

विनीतानाममङ्ग या हि भर्षाशा स्वाभिदग्निता ॥

—त्रिपठि १।४।८९-९२

२४५ (क) तो कि करेगो ? कि जु-कामो उदाह आवाणामो ?

—भावमल मल वृ पृ २३१

(ल) भावमलमल पृ २६।

(ग) स्वरा-मेनाऽन्यराज्यदत्ताऽपहृतभरतेश्वर ।

न सन्तुष्टिं भवन् । बडवाग्निरिवाऽम्बुजि ॥

आचिन्दे-कवाऽवपा रा-यानि पृथिवीमुवाच ।

अस्माकमपि भरतस्तदवाचानुमिच्छति ॥

सुखों से आध्यात्मिक सुख विशेष है।^{२४०} इसे ग्रहण करो, इसमें न कायरता की आवश्यकता है और न युद्ध का ही प्रसंग है।

सूख लकड़हारे^{२४१} का रूपक देते हुए भगवान् ने कहा—एक लकड़हारा था वह भाम्यहीन और अज्ञ था। प्रतिदिन कोयले बनाने के लिए वह जंगल में जाता और जो कुछ भी प्राप्त होता उससे अपना भरण पोषण करता। एक बार वह भीष्म-ग्रीष्म की चिल चिलानी धूप में थोड़ा-सा पानी लेकर जंगल में गया। सूखी लकड़ियाँ एकत्रित कीं। कोयले बनाने के लिए उन लकड़ियों में आग लगा दी।

चिलचिलानी धूप प्रचण्ड ज्वाला तथा गम भू के कारण उसे अत्यधिक व्यास होती। साथ में जो पानी लाया था वह भी गया पर व्यास शान्त न हुई। इधर उधर जंगल में पानी की प्रवेष्टा की पर कहीं भी पानी उपलब्ध नहीं हुआ। सन्निकट कोई गाँव भी नहीं था व्यास से गला सूख रहा था पयराहट बन रही थी। वह एक वृत्त

२४७ भगवती १४ उद् ० ६।

२४८ ताहे इगलवाहगविदु त कश्चि जहा एगो इगलवाहगा सो एग भायण पाणिमस्स भरेऊण गतो त तत्र उदय जिह्वित उर्ध्व आदिभ्यो पासे भग्नी पुत्रो परिस्सभो दास्याधि कोट्टं तस्स वर गतो तत्थ पाणित पीतो एव अस्स भायपट्टवणाए कुबललागणविदुसमुद्गा य सत्थ पात्ता व व तप्प्हा वि-वति ताहे एगमि तप्पकुहितविरस पाणिए चुल्लूजभिरिडे तत्थपुलित बह्मव उस्सिचति ५ पवितसेस त पीत्ताए निहति से केस ए । एव तप्पेहिंवि अणुत्तर सत्थदु अणुत्तरा सत्थेऽवि सत्थलोए सहफरिसा अणुपूतपुत्था तहमि तिंति व गता तो ए इमे माणुस्साए जसुएए तुप्पे जप्पकालिए विरसे कामभोगे भविलसह एव वयालीय वाम अज्जमसं भासति सत्थुग्गह किंन बुग्गह”

—आवश्यकवृत्ति त्रिनदास पृ १ ६-२१

(क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति।

(ग) आवश्यक हार्दभट्टीया वृत्ति।

के नीचे लेट गया, नींद आगई। उसने स्वप्न देखा कि वह घर पहुँच गया है। घर पर जितना भी पानी है, पी गया है, नद्यापि प्यास शान्त नहीं हुई। कुँए पर गया और वहाँ का माग पानी पी गया। पर प्यास नहीं बुझी। नदी, नाले और द्रोहो का पानी पीता हुआ समुद्र पर पहुँचा, समुद्र का सारा पानी पी लेने पर भी उमकी प्यास कम नहीं हुई। तब वह एक पानी में रहित जीणें कूप के पाम पहुँचा। वहाँ पानी तो नहीं था, किन्तु भीगे हुए निनको को देखकर मन ललचाया और उन निनको को निचोड़ कर प्यास बुझाने का प्रयाम कर रहा था कि नींद खुल गई। रूपक का उपमहार करते हुए भगवान् ने कहा—क्या पुत्रो! उन भीगे हुए निनको में उम लकड़हारे की प्यास शान्त हो सकती है? जबकि कुँए, नदी, द्रोह, नालाव और समुद्र के पानी से नहीं हुई थी।

पुत्रो ने एक स्वर से कहा—नहीं भगवन्! कदापि नहीं।

भगवान् ने उन्हें अपने अभिमत की ओर आकृष्ट करते हुए कहा—पुत्रो! राज्यश्री से तृष्णा को नात करने का प्रयाम भी भीगे हुए निनको को निचोड़कर पीने से प्यास बुझाने के प्रयास के समान है। दीर्घकालीन अपार स्वर्गीय सुखों से भी जब तृष्णा शान्त नहीं हुई तो इस तुच्छ और अल्पकालीन राज्य से कैसे हो सकती है? अतः सम्बोधि को प्राप्त करो। वस्तुन जब तक स्वराज्य नहीं मिलता तब तक परराज्य की कामना रहती है। स्वराज्य मिलने पर परराज्य का मोह नहीं रह जाता।

भगवान् ने उम समय अपने पुत्रो को वैराग्यवर्द्धक एय प्रभाव-जनक जो उपदेश दिया था, वह सूत्रकृतांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कध के द्वितीय 'वैतालीय' नामक अध्यायन में उल्लिखित है। जिनदास महत्तर के उल्लेख में स्पष्ट है कि यह अध्यायन भगवान् के उसी उपदेश के आधार पर प्रवृत्त हुआ है। उस उपदेश में बतलाया गया है कि—'मानव को शीघ्र-से-शीघ्र प्रतिबोध लाभ करना चाहिए, क्योंकि व्यतीत समय लौटकर नहीं आता और पुनः मनुष्यभव सुलभ नहीं है। प्राप्त जीवन का भी कोई ठिकाना नहीं। बालक, वृद्ध यहाँ तक कि गर्भव्य मनुष्य भी मृत्यु के शिकार हो

जाते हैं। जगत् का उत्कृष्ट-से उत्कृष्ट वशव भी मृत्यु का निवारण करने में समर्थ नहीं है। यही कारण है कि देव दानव गंधर्व भूमिचर सरीसप राजा और बड़े-बड़े सेठ साहूकार भी दुःख के साथ अपने स्थान से च्युत होते देखे जाते हैं। बन्धन से च्युत ताल फल के समान प्रायु के टूटने पर जीव मृत्यु को प्राप्त होते हैं इत्यादि।

वस्तुतः यह सम्पूर्ण अध्ययन अतीव भागिक और विस्तृत है। मुमुक्षुजनों के लिए मननीय है।

भागवतकार ने भी भगवान् के पुत्रोपदेश का ग्रहण दिया है जिसका सार इस प्रकार है—पुत्रो 'मानवशरीर दुःखमय विषयभोग प्राप्त करने के लिए नहीं है। ये भोग तो विष्टाभोजी कूकरगुरादि को भी प्राप्त होते हैं अतः इस शरीर से विषय तप करना चाहिए क्योंकि इसी से परमात्मनत्व की प्राप्ति होती है।'^{२४}

प्रमाद के वश मानव कुकर्म करने को प्रवृत्त होता है। वह इन्द्रियो को वृत्त करने के लिए प्रवृत्ति करता है पर मैं उसे धृष्ट नहीं समझता क्योंकि उसी से दुःख प्राप्त होता है।^{२५} अब तक आत्मतत्त्व की जिज्ञासा नहीं होती तब तक स्वस्वरूप के दर्शन नहीं होते वह विकार और वासना के दलदल में फँसा रहता है और उसी में बन्धन की प्राप्ति होती है।^{२६}

२४६ नाथ देहो देहभावा शुभोक

कष्टान् कामानर्हति विदुषा ये ।

तपो विष्य पुत्रका येन सत्त्व

शुद्धयेवस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तरम् ॥

—श्रीमद् भागवत ५।५।१।५५६

२४७ पुनः प्रमत्तं कुरुते विकर्म

यदिन्द्रियप्रीत्यै वापृषोति ।

न साधु मन्ये यत आत्मनोऽयम्—

मयात्रापि भवेत्तद वास ईह ॥

—श्रीमद् भागवत ५।५।४।५५६

२४८ पराभवस्तान्दबोध-वातो

भाव्यन् विहास्यत आत्मतत्त्वम् ।

इस प्रकार अविद्या के द्वारा आत्म-स्वरूप याच्छन्न होने से कर्मबामनाओं से बशीभूत बना हुआ चित्त मानव को फिर कर्म में प्रवृत्त करता है। अतः जब तक मुक्त परमात्मा में प्रीति नहीं होती तब तक देहबन्धन में मुक्ति नहीं मिलती।^{१५५}

स्वार्थ में उन्मत्त बना जीव जब तक विवेकदृष्टि का आश्रय लेकर इन्द्रियो की चेष्टाओं को अयथार्थ रूप में नहीं देखता है, तब तक आत्मस्वरूप विस्मृत होने में वह गृह आदि में ही ग्रामस्त रहता है और विविध प्रकार के बलेश उठाता है।^{१५६}

इस प्रकार भगवान् की दिव्य देणना में राज्य-त्याग की बात को सुनकर वे सभी अवाक् रह गये, पर शीघ्र ही उन्होंने भगवान् के प्रणस्त पथप्रदर्शन का स्वागत किया। अठानवे ही भ्राताओं ने राज्य त्यागकर सयम ग्रहण किया।^{१५७}

यावत्क्रियास्तावद्विद मनो वै,

कर्मात्मक येन क्षरीरबन्ध ॥

—भागवत ५।५।५।५६०

१५२ एव मन कर्मबल प्रमुद्वक्ते,

अविद्ययाऽऽत्मन्युपधीयमान ।

प्रीतिर्न बाधन्मयि बाधुदेवे,

न मुच्यते देहयोगेन तावत् ॥

—भागवत ५।५।६।५६०

१५३ यदा न पश्यत्ययदा गुणेहा,

स्वार्थे प्रमत्ता सहसा विपश्चित् ।

गतस्मृतिर्विन्दति तत्र तापा-

नासाद्य मैशुन्यमगारमत्त ॥

—भागवत ५।५।७।५६०

१५४. (क) एव अट्टाणउईए वित्तोहि अट्टाणउई कुमारा पब्बइत्ता ।

—आवश्यक सूणि

(ख) एव अट्टाणउईवित्तोहि अट्टाणउई कुमारा पब्बइत्ता ।

—आवश्यक मल० धृ० प० २३१

सम्राट् भरत को यह सूचना मिली तो वह दौड़ा-दौड़ा आया । भ्रातृ प्रेम से उसकी आँख गीली हो गई । पर उसकी गीली आँखें मठानव भ्राताओं की पथ से विचलित नहीं कर सकी । भरत निराश होकर पुनः घर लौट गया । २५५-२ ॥

भरत और बाहुबली

भरत समग्र भारत में यद्यपि एक शासनतन्त्र के द्वारा एक प्रसिद्ध भारतीय संस्कृति की स्थापना करने के लिए प्रयत्नशील थे मगर दूसरों की स्वतन्त्रता को सीमित किये बिना उनका उद्देश्य पूरा नहीं हो सकना था । २५५ भाइयों के वीक्षित होने से यद्यपि उनका पथ निष्कण्ठक धन गया था तथापि एक बड़ी बाधा अब भी उनके सामने थी । वह थी बाहुबली को अपना भागानुवर्ती बनाना । इसके लिए उसने अब अपने लघु भ्राता बाहुबली को यह सन्देश पहुँचाया

(ग) अथ दानं नि स्व-वनिर्वाणप्राप्तिकारणम् ।

वत्सा । सयमराज्यं तद् भुज्यते यो विवेकिनाम् ॥

तत्कालोत्पन्नसर्वेष्वेवा नयनवदितिके ।

तेऽप्यन्यतरिप्यासु प्रवृत्त्या न गृह्यते ॥

—विपट्ठि १।४।५४४-५४५ ५० ११०

(घ) इत्याकण्य विभोवसि पर निवदमानता ।

महाप्राजापत्यमास्थाय निष्क्रान्तास्ते बृहाद्वनम् ॥

—महापुराण १४।१२५।१६२

२५५-२५६ भागवत भावभाण समुसरथे धृष्ट दिदृन्तो ।

—भाषा नि गा १४५

(ङ) यदि भातरो म इच्छति तौ भोव देवि भगव न भायते
ताहे भातए भोवहि निमतेति ते न इच्छति नत वसितु ।

—आवस्कक जूजि ॥ २१२

(ण) भरतोऽपि भ्रातृपुत्रावस्तुनाम् सञ्जातमनस्तापोऽधुना ब्रह्मे
वदाविद्भोगादीन् शोचमानान् पुनरपि वृक्षन्तीत्यालोच्य
भगवत्समीपं धामभ्य निमज्जयन् तान् ।

—आवस्कक मज्झि ५ ५ २३५

(च) विपट्ठि १।६।१६-१६६

कि वह अधीनता स्वीकार करले। ज्योही भरत का यह मन्देष्ट सुना, त्योही बाहुवली की भृकुटि तन गई। उपशान्त कोय उभर आया। दाँतो को पीमते हुए उमने कहा—“क्या भाई भगत की भूय अभी तक शान्त नहीं हुई है? अपने लघु भ्रातायो के राज्य को छीन करके भी उम मन्तोष नहीं हुआ है। क्या वह मेरे राज्य को भी हड़पना चाहता है। यदि वह यह समझता है कि मे शक्तिशाली हूँ और शक्ति मे सभी को चट कर जाऊँगा तो यह शक्ति का मनुष्ययोग नहीं, दुष्पयोग है। मानवता का भयङ्कर अपमान है और व्यवस्था का अतिक्रमण है। हमारे पूज्य पिता व्यवस्था के निर्माता हैं और हम उनके पुत्र होकर व्यवस्था को भङ्ग करते हैं। यह हमारे लिए उचित नहीं है। बाहु-बल की दृष्टि से मैं भरत से किमी प्रकार कम नहीं हूँ। यदि वह अपने बड़प्पन को विस्मृत कर अनुचित व्यवहार करता है तो मैं चुप्पी नहीं साध सकता। मैं दिखा दूँगा भरत को कि आक्रमण करना कितना अनुचित है। जब तक वह मुझे नहीं जीनता तब तक विजेता नहीं हूँ।”^{२५७}

भरत विराट् सेना लेकर बाहुवली से युद्ध करने के लिए “बहली वेश” की सीमा पर पहुँच गये। बाहुवली भी अपनी छोटी सेना सजाकर युद्ध के मैदान में आगया। बाहुवली के वीर सैनिकों ने भरत की

२५७ जाहे ते सव्वे पव्वइत्ता ताहे भरहेण बाहुबलिस्स पत्थवित्त, ताहे सो ते पव्वइते सोऊण आसुरत्तो भणत्ति—ते वाला तुमे पव्वाविता, अह पुण जूइसमत्त्वो। कि वा मममि अजिते तुमे जित्ति ति? ता एहि अह वा राया तुम वा।

—आवश्यक जूणि, पृ० २१०

(ख) कुमारैसु पव्वइएसु भरहेण बाहुबलिणो दूओ पेसिओ, सो ते पव्वइए सोऊ आसुरत्तो, ते वाला तुमए पव्वाविता।

—आवश्यक मल० वृ० प० २३१

हत्वाऽनुजाना राज्यानि, नूनमेव न लज्जितः।

जितकासी राज्यकृते, मामप्याह्वयते यतः॥

—निपटि० १।१।४६७

विराट् सेना के छक्के लुझा दिये । अन्धे समय तक युद्ध चलता रहा, पर न भरत ही जीते और न बाहुबली ही । अन्त में बाहुबली के कहने पर निश्चय किया कि व्यस ही मानवों का रक्तपात करना अनुचित है । बसो न हम दोनों मिलकर युद्ध कर लें ।^{१५८}

दिगम्बराचार्य जिनसेन ने दोनों भाइयों के जलयुद्ध दृष्टियुद्ध और बाहुयुद्ध इन तीन युद्धों का निरूपण किया है ।^{१५९}

आचार्य जिनदास गरिमहत्तर ने दृष्टि युद्ध वाग् युद्ध बाहु युद्ध और मुष्टि युद्ध का प्ररूपण किया है ।^{१६०}

उपाध्याय श्री विनय विजय जी ने दृष्टि युद्ध वाग् युद्ध, मुष्टि युद्ध दण्ड युद्ध इन चार युद्धों का निर्देश किया है ।^{१६१}

आवश्यक भाष्यकार,^{१६२} तथा आचार्य हेमचन्द्र^{१६३} व

१५८ ताहे से सम्भवसेन दावि बेसते मितिया ताहे बाहुबलिना भणित—
कि अश्वराहिना लोभन मारिएन ? कुन अह च कुपया पु-आमो
एव होउति ।

—आवश्यक चूर्णि पृ २१

१५९ जलदृष्टिनिमुद्ध पु धोऽन्योर्वयमाप्स्यति ।
स जयधीमितासिन्वा पतिरस्तु स्वयकुल ॥

—महापराच ३३।४५।२ ४१ द्वि भा

१६० तेसि पढम दिष्टिजुद्ध जात तत्त्व भरहो पराजितो । पन्था बायाए,
तद्विपि भरहो पराजितो एव बाहुजुद्धऽपि पराजितो ताहे
मुष्टिजुद्ध जात तत्त्वपि पराजितो ।

—आवश्यक चूर्णि पृ २१

१६१ कल्पसूत्र सुशोचिका टीका पृ ५१३ सारा न

१६२ पवन दिष्टीजुद्ध बायाजुद्ध तहेव बाह्याह ।

मुद्धीहि न दडेहि न सम्बत्त्वपि निष्पए भरहो ॥

—आवश्यक भाष्य भा ३२

१६३ त्रिपट्टि० पर्व १ सर्ग ५

समयसुन्दर^{२५५} प्रभृति ने दृष्टि युद्ध, वाङ्‌युद्ध, वाह्ययुद्ध, मुष्टि युद्ध और दण्डयुद्ध इन पाँच का वर्णन किया है। सगी में मन्नाट् भरत पराजित हुए और बाहुवली विजयी हुए। भरत को अपने लघु भ्रातामें पराजित होना अत्यधिक अश्वग^{२५६} आवेग में आकर और मर्यादा को विस्मृत कर बाहुवली के शिरच्छेदन करने हेतु भरत ने चक्र का प्रयोग किया। यह देख बाहुवली का खून उबल गया। बाहुवली ने उद्धतकर चक्र को पकड़ना चाहा, पर चक्र बाहुवली की प्रदक्षिणा कर पुनः भरत के पास लौट गया। बाहुवली का बाल भी बाँका न हुआ।^{२५७} यह देख सभी सन्न

२१४ पञ्चयुद्धानि स्थापितानि (१) दृष्टियुद्ध, (२) वाङ्‌युद्ध, (३) बाहुयुद्ध, (४) मुष्टियुद्ध, (५) दण्ड युद्धानि। एतं पञ्चयुद्धं योजितं स जितो ज्ञेयः।

—वल्पलता— समयसुन्दर पृ० २१०

(ख) कल्पार्थ बोधिनी पृ० १५१।

(ग) कल्पद्रुम कलिका पृ० १५०।

२१५. सो एष जिष्ममाणो विदुरो अहं नरवर्धं विचिन्तेत्।

किं मन्ते एष चक्री ? जहं दाणिं दुष्कृतो अहम् ॥

—आवश्यक भाष्य गा० ३३

(घ) ताह सो एष जिष्ममाणो विदुरो अहं नरवर्धो विचिन्तेति किं मन्ते एष चक्री जहं दाणिं दुष्कृतो अहम्, तस्मैव सफन्ने देवता आजहं देनि उहग्यसु, ताहं गा नेण गहिसेण धावति।

—आवश्यक चूर्ण० २१०

(ग) क्रोधान्धेन तदा दये, मनुमन्थ पराजयम्।

चक्रमुरकृतनिक्षेपद्विपञ्चकं निरीक्षिता ॥

आध्यानमात्रमेत्याराद अद कृत्वा प्रदक्षिणाम्।

अचम्परयास्य पर्यन्तं तस्थौ मन्दीकृतात्तपम् ॥

—महापुराण, पर्व ३६, श्लो० ६५-६६ भा० २ पृ० २०५

२६६. एव विमृशतस्तद्विलामस्तु खेत्य तत्।

चक्रं प्रदक्षिणा चक्रमन्तेवासी गुरोरिव ॥

न चक्रं चक्रिष्य क्षतं, सामान्येऽपि स्वयोजने।

विशेषस्तु चरमक्षरीने नरि ताहमे ॥

—प्रियपट्टि० १५।७२१।७२३

रह गये। बाहुबली की विरुद्धावली से भूनभ गूँज उठा। भरत अपने दुष्कृत्य पर लज्जित हो गये।^२

इस घटना से त्रुट हो बाहुबली ने भरत पर प्रहार करने के लिए अपनी प्रवण सुटठी उठाई। उस देख लाखों कण्ठों से ये स्वर लहरियाँ फूट पड़ा—समाद भरत ने भूल की है पर आप भूल न कर। लघु भाई के द्वारा बड़े भाई की हत्या अनुचित ही नहीं अत्यन्त अनुचित है।^३ महान् पिता के पुत्र भी महान् होते हैं। क्षमा कीजिये क्षमा करने वाला कभी छोटा नहीं होता।

बाहुबली का रोष कम हुआ। उठा हुआ हाथ भरत पर न पड़कर स्वयं के सिर पर गिरा। वे लुचन कर धमण बन गये।^४ राज्य को ठुकराकर पिता के चरण चिह्नो पर चल पड़े।^५

सफलता नहीं मिली

बाहुबली के पर चलते-चलते रुक गये। वे पिता की के शरण में पहुँचने पर भी चरण में नहीं पहुँच सके। तब वीक्षित लघु भ्राताओं की

२६७ भरतस्त तत्रा दृष्ट्वा विचार्य स्व दुर्मर्षम् ।
बभूव पञ्चिभ्रतभीमो विविधुरिव मेदिनीम् ॥

—विषयि १।४।७४६

२६८ अमर्षांश्चिन्तयित्वा सुमन्दानमना दृष्ट्वा ।
मुष्टिमुपम्य यमवद् भीषणं समभाषत ॥
करीषो मुदगरकर इतमुष्टिकरो ब्रह्मम् ।
अगाम भरताभीमान्तिकं तलपितापति ॥

—विषयि १।४।७२७-७२८

२६९ इत्युदित्वा महासत्त्वं सोऽग्रशीरोऽग्रकारिणाम् ।
तेन च भुष्टिना मूर्च्छं उद्धमं तुल्यवद् क्वान् ॥

—विषयि १।४।७४

२७ सोऽप्येव चिन्तयामास प्रतिपन्नमहावत ।
किं सातपाप्ययान्तमहं बन्धमि सम्प्रति ? ॥

—विषयि १।४।७४२

नमन करने की बात स्मृति में आते ही उनके चरण एकान्त ज्ञान कानन में ही स्तब्ध हो गये, असन्तोष पर विजय पाने वाले बाहुवली अस्मिता से पराजित हो गये। एक वर्ष तक हिमालय की नगह अटान ध्यान-मुद्रा में अवस्थित रहने पर भी केवल ज्ञान का दिव्य आलोक प्राप्त नहीं हो सका। शरीर पर लताएँ चढ़ गई, पशियाँ ने घासने बना लिये, पैर बल्मीको (बाँवियों) में वेष्टित हो गए, तथापि सफलता नहीं मिली।^{१५१}

बाहुवली को केवलज्ञान

एक वर्ष के पश्चात् भगवान् श्री ऋषभदेव ने बाहुवली में अन्तर्ज्योति जगाने के लिए ग्राही और सुन्दरी को प्रेषित किया।

२७१ पञ्चा बाहुवली पितेति—अहं किं तावाणं पानं वच्चामि ? इह चैव अञ्छामि जाय केवलज्ञानेण उण्णज्जति । एव सो पडिमं ठितो पण्ययसिहरो । सामी जाणति तहंवि न परयवेति, अमूढलमगा तित्थगरा । ताहे सबच्छं अच्छति काउरसग्गेण वल्मीकितारोणं वेदितो पादा य वम्मिएण ।

—आवश्यक पूर्णि-पृ० २१०

(ग) बाहुवली विधिते—तायममीवे भाउणा मे समुत्तरा समुपपण्णजाणतिसमा ते किहं निरतिसमा वेच्छामि ? एत्थेव ताव अच्छामि जाय केवलज्ञानेण उण्णज्जति, एव सो पडिमं ठितो, ठितो मायपण्ययसिहरो, जाणइ सामी तहंवि न पट्टवेद, अमूढलमगा तिरयगरा, ताहे सबच्छं अच्छति काउरसग्गेण, वल्मीकितारोणं वेदितो पादा य वम्मियनिभगएहं भुमगेहि ।

—आवश्यक मन्थगिरि वृत्ति० प० २३२।१

(ग) शरीरमधिस्वेस्ते सर्वमानेभूजगमे ।

बभौ बाहुवनिर्वाहुमहन्ममिष धारयन् ॥

पादपय तवत्मीकविनिर्यातिमहोरगी ।

पादयोर्वेष्टयाचक्रे म पादकटवैरिव ॥

इत्थं स्थितस्य ध्यानेन तस्यैको बत्सरो ययौ ।

विनाऽऽहारं विहन्तो वृषभस्वामिनो यथा ॥

—त्रिपट्टि० १।१।७७६-से ७७८

भगिनीद्वय ने बाहुवली को नमन किया और कहा—‘हस्ती पर ग्राह्य व्यक्ति को कभी केवल ज्ञान की उपलब्धि नहीं होती मत नीचे उतरो’^{२२२}—ये शब्द बाहुवली के कण कुहरों में गिरे, चिन्तन का प्रवाह बदला—कहाँ है यहाँ हाथी? क्या अभिप्राय है इनका? हाँ समझा मान हाथी है और मैं उस पर ग्राह्य हूँ। मैं व्यथ ही अवस्था के भेद में उलझ गया। वे आई वय में भले ही मुझ से छोटे हैं पर चारित्रिक दृष्टि से बड़े हैं। मुझे नमन करना चाहिए। नमन करने के लिए ज्यों ही पर उठे कि बचन टूट गये। विमय ने अहंकार को पराजित किया। केवली बन गये। मगवान् के शरणा में पहुँच

२७२ पुनः सचच्छरे भगव नमिमुदरीमो पश्यवेदि । पुम्बि न पस्मिठाजो जेण तया सम्म न पस्मिज्जइति ताहि सो मग्गतीहि वस्तीहि य तणेहि य वेडितेण य महस्सेण कुप्पेण य इदुख वदितो ताहि, इम च भवितो— न निर हस्मि विससस्स वेवसनासु उप्पज्जइ एव भगिऊण वतामो ।

—आवश्यक श्रुति-प २१०-२११

(क) पुनः सचच्छरे भगव नमिमुदरीमो पश्यवेदि पुम्बि न पस्मिठाजो जेण तया सम्म न पस्मिज्जइति ताहि सो मग्गतीहि वस्तीहि य तणेहि य वेडितेण य महस्सेण कुप्पेण य इदुख वदितो ताहि, इम च भवितो— न निर हस्मि विससस्स केवल नासु समुप्पज्जइ ति भगिऊण वतामो ।

—आवश्यक श्रुति मत्त वृत्ति प २१२

(ग) निपुण सखमित्वा त कुत्वा विस्व प्रदक्षिणाम् ।
महामुनि बाहुवलि ते वन्दित्वमनूयतु ॥
ब्राह्मणमस्ति तातस्त्वा अयेच्छाय ! मयवानिदम् ।
हस्तिस्त्वचाभिरहानामुत्पद्यत न वेवतम् ॥

—निपट्ठि ११३।७८७-७८८

- (घ) कल्पलता समव मुन्दर ५ २११।१
(ङ) कल्पद्रुम कलिका लक्ष्मी प १३२
(च) कल्पार्थ बोधिनी ५ १४४-१४५

से करते हुए बताया है कि बाहुबली श्रमण बनकर एक वर्ष तक ध्यानस्थ रहे। भरत के अकृत्य का विचार उनके अन्तर्मानस में बना रहा। जब एक वर्ष के पश्चात् भरत आकर उनकी भचना करते हैं तब उनका हृदय निश्चय बनता है और केवल ज्ञान उत्पन्न होता है ।^{२०४}

अनासक्त भरत

भरत ने अपने भ्राताओं के साथ जो व्यवहार किया था उससे वे स्वयं लज्जित थे। भ्राताओं को गैरकर राज्य प्राप्त कर लेने पर भी उनके अन्तर्मानस में शान्ति नहीं थी। विराट् राज्य का उपभोग करते हुए भी वे उसमें आसक्त नहीं थे। मगध होने पर भी वे साम्राज्यवादी नहीं थे।

एक बार भगवान् श्री शुद्धभदेव अपने गिष्यवगसहित विनीता के बाग में पधारे। जनसमूह धनदेशना ध्वज करने को आया। प्रवचन परिषद् में ही एक सज्जन ने भगवान् से प्रश्न किया— भगवन् ! क्या भरत भोगगामी है ? वीनराग भगवान् ने कहा— हा। प्रश्नकर्ता ने कहा— आश्चर्य है भगवान् हाकर भी पुत्र का पक्ष लेते हैं।

भरत ने सुना और सोचा—भगवान् पर यह आरोप लगा रहा है। इसे मुझे शिखा देनी चाहिए। दूसरे ही दिन उस व्यक्ति को फाँसी की सजा सुना दी गई। फाँसी की सजा सुन वह बबराया। भरत के चरणों में विराट् गिड़गिड़ाया अपराध के लिए क्षमा माँगने लगा।

भरत ने कहा—तब से परिपूरित कटोरे को लेकर विनीता के बाजारों में घूमो। स्मरण रखना एक बूँद भी नीचे न गिरने पाये। नीचे गिरते ही फाँसों के तख्त पर सटका दिये जायेंगे। यदि एक बूँद भी नीचे न गिरेगी तो तुम्हें मुक्त कर दिया जायेगा।

२०४ संक्षिप्ता मरणाधीन सोऽस्मत्त इति यत्किञ्च ।

हृदस्य हार्दं तेनामीन् कटूनाऽपेनि केवलम् ।।

—महापुराण जिल् १६:१८६।२१७ डि भा

अभियुक्त मन्नाद् के आदेशानुसार घूमकर लौट आया।

मन्नाद् ने प्रश्न किया—क्या तुम नगर में घूमकर आये हो ?
अभियुक्त ने विनीत मुद्रा में कहा—हाँ महाराज ! मन्नाद् ने पुन प्रश्न किया—नगर में तुमने क्या नया देखा ?

अभियुक्त ने निवेदन किया— कुछ भी नहीं देखा भगवन् !

सन्नाद् ने पुन पूछा—क्या नगर में जो नाटक हो रहे थे वे तुमने नहीं देखे ? क्या नगर में जो मर्गीन मण्डलिया यवनन गगीन गीत गीत थीं उन्ही तुमने नहीं सुना।

अभियुक्त ने कहा—राजन् ! अथ मीन नेत्रों के मागन नाच रही हो तब नाटक कैसे देखे जा सकते हैं ? और जब मीन की गुनगुनाहट कर्णबुद्धों में चल रही हो तब गीत कैसे सुन जा सकते हैं ?

सन्नाद् ने मुस्कगते हुए कहा—क्या मृत्यु का इतना अधिक भय है ?

अभियुक्त ने कहा—सन्नाद् कां इसका क्या पता ' यह तो मृत्यु-वण्ड पाने वाला ही अनुभव कर सकता है।

सन्नाद् ने कहा—तो क्या मन्नाद् अमर है ? उस मृत्यु का साक्षात्कार नहीं करना पड़ेगा ? तुम तो एक जीवन की मृत्यु से ही इतने अधिक भयाक्रान्त हो गए कि आँखों के सामने नाटक होने पर भी नाटक नहीं देख सके और कानों के पास संगीत की सुमधुर स्वर लहरियाँ भनभनाने पर भी संगीत नहीं सुन सके। परन्तु वन्द, मुन्ह यह ज्ञान होना चाहिये कि मैं तो मृत्यु की दीर्घपरम्परा से परिचित हूँ अतः मुझे अब साक्षात्कार का विराट् सुख भी नहीं लुभा पा रहा है। मैं तन से गृहस्थाश्रम में हूँ, पर मन से उपरत हूँ।

अभियुक्त को अब भगवान् के सत्य कथन पर शका नहीं रही। उसे अपना अपराध समझ में आ गया। उसे मुक्त कर दिया गया।^(१७)
भरत से भारतवर्ष

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रतापपूर्ण प्रतिभामय्यन्न

भरत एक प्रतिजात पुत्र यः । पिता के द्वारा प्राप्त राज्यधी को उन्होंने अत्यधिक विस्तृत किया और छ स्रष्ट के अधिपति चक्रवर्ती सम्राट् बने ।^{२०८} केवल तन पर ही नहीं अपितु प्रजा के मन पर शासन किया । उनकी पुण्य सस्मृति में ही प्रकृत देश का नाम भारतवर्ष हुआ ।

वसुदेव हिंडी^२ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति^{२०८} श्रीमद्भागवत^{२०९}
वायुपुराण^२ अग्निपुराण^३ महापुराण^२, नारदपुराण^{२६३}

२७६ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति भरताविकार

२७७ तस्य भरहो भरह्वासचूडामणी ।

तस्सव नामेव इह भारह्वास ति पम्बुचति ॥

—वसुदेवहिंडी प्र ज पु १८६

२७८ भरतनाम्नस्वर्णिमो देशः च भारतनाम प्रवृत्त भरतवर्षाच्च तयोर्नाम ।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृत्ति

२७९ यथा सखु महायोगी ज्येष्ठ य ष्ठबुध

मासीद नेव यः भारतमिति व्यपदिशन्ति ।

—श्री मद्भागवत पुराण स्कन्ध ५ अ ४।६

(ख) अजनाम नामतद्वयः भारतमिति चत आरम्भ व्यपदिशन्ति ।

—श्री मद्भागवत ५।७।१। पु ५६६

(ग) तेषां च भरतो ज्येष्ठो मारायणपरायण ।

विस्थात वर्षमैतद् वज्रान्ना भारतमद्रुतम् ॥

—भागवत ११।२।१७

२८० हिमाह्वय दक्षिण वर्ष भरताय न्यवेदयत् ।

तस्माद् भारत वर्ष तस्य जन्मा विदुषुषा ॥

—वायुपुराण अध्या ३३ श्लो ५९

२८१ भरताद् भारत वर्ष भरतात् कुमतिस्त्वमूर्त् ।

—अग्निपुराण अ १ श्लो० १३

२८२ तस्मान्ना भारत वर्षमिति ह्यख्येयनास्पदम् ।

हिमाद्र रासमुद्राच्च क्षत्र चक्षुःश्रुतामिदम् ॥

—महापुराण १५।१५।३३६

२८३ मासीत पुरा मुनिम्य ष्ठो भरतो नाम भूपति ।

आर्यभो मस्य नाम्नद भारत स्रष्टमुच्यते ॥

—नारदपुराण अध्या ४८ श्लो ५

विष्णु पुराण^{२८४}, गरुडपुराण^{२८५}, ब्रह्मपुराण^{२८६}, मार्कण्डेय पुराण^{२८७},
वाराह पुराण^{२८८}, स्कन्ध पुराण^{२८९}, लिङ्ग पुराण^{२९०}, शिवपुराण^{२९१},
विश्वकोष^{२९२} प्रभृति ग्रन्थों के उद्धरणों के प्रकाश में भी यह

२८४ ऋषभाद् भरतो जज्ञे ज्येष्ठ पुत्रसताम्रज ।

ततश्च भारत वर्षमेतल्लोकेषु गीयते ॥

—विष्णुपुराण मस २, अध्या० १ श्लो० ३२

२८५ गरुडपुराण, अध्याय १, श्लो० १३

२८६ सोऽभिपिच्यर्षभ पुत्र महाप्राप्ताज्यमास्थित ।

हिमाक्षय दक्षिण वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधा ॥

—ब्रह्माण्ड० अ० १४, श्लो० ६१

२८७ अग्निःसूनोर्नाभिस्तु ऋषभोऽमृतं मुतो द्विज ।

ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीर पुत्रसताम् वर ॥

सोऽभिपिच्यर्षभ पुत्र महाप्राप्ताज्यमास्थित ।

तपस्तेपे महाभाग पुलहाश्रमसंशय ॥

हिमाक्षय दक्षिण वर्षं भरताय पिता वदौ ।

तस्मात् भारत वर्षं तस्य नाम्ना महात्मन ॥

—मार्कण्डेय पुराण ६३।१८-४०

२८८ हेमाद्रदक्षिण वर्षं महद् भारत नाम वशास्त ।

—वाराह पुराण अध्याय० ७४

२८९ तस्य नाम्ना विद्य वप भारत नैति कीर्त्यते ।

—स्कन्ध पुराण अध्या० ३७, श्लो० ५७

२९० तस्मात् भारत वप तस्य नाम्ना विदुर्बुधा ।

—लिंग पुराण, अध्याय ४७, श्लो० २४

२९१ तद्यापि भरते ज्येष्ठे सण्डेऽस्मिन् स्पृहतीवके ।

तक्षामा नैव विख्यातं शब्दं च भारत तदा ॥

—शिव पुराण, अध्या० ५२

२९२ नाभि के पुत्र ऋषभ और उनके पुत्र भरत थे । भरत ने धर्मानुसार
जिम वर्ष का शासन किया उनके नामानुसार वही भारतवर्ष कहलाया ।

—हिन्दी विश्वकोष

स्पष्ट है कि ऋषभपुत्र भरत चक्रवर्ती के नाम से ही प्रस्तुत देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। पाश्चात्य विद्वान् श्री जे० स्टीवेन्सन^{१३} का भी यही अभिमत है और प्रसिद्ध इतिहासज्ञ रंगनाथसाहू एम ए^{१४} व रामधारीमिह्र दिनकर^{१५} का भी यही मन्तव्य है।

कुछ लोग दुष्यन्त पुत्र भरत से भारतवर्ष का नाम सस्थापित करना चाहते हैं पर प्रबल प्रमाणों के अभाव में उनकी बात किस प्रकार मान्य की जा सकती है। उन्हें अपने मतानुसार की छोरछोर यह सत्य नष्ट्य स्वीकार करना ही चाहिए कि श्री ऋषभ पुत्र भरत के नाम में ही भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ।

भरत को केवल ज्ञान

दीर्घकाल तक राज्याधी का उपभाग करने के पश्चात् [भगवान् श्री ऋषभदेव के मोक्ष पधारने के बाद] एकबार सम्राट भरत ब्रह्माभूषण से सुमज्जित होकर आदण (बाँध) के भव्य भवन में गये। भगुली ने भगूठी गिर गई जिसमें भगुली असुन्दर प्रतीत हुई। भरत के मन में एक दिक्कार आया। अथ ब्रह्माभूषण भी उतार दिए। चिन्तन के आसोव में सोचा—पर-ब्रह्मों से ही यह शरीर सुन्दर प्रतीत होना है। कृनिम सौन्दर्य वस्तुतः सही सौन्दर्य नहीं है। आत्म

१२३ Brahmanical Miranas prove Rishabh to be the father of that Bharat from whom India took its name Bharatv sha

—Kālpasūtra Introd P XVI

१२४ ऋषिदा न हमार देश ना आम प्राचीन चक्रवर्ती सम्राट भरत के नाम पर भारतवर्ष रखा जा।

—प्राचीन भारत पृ ६

१२५ भरत ऋषभदेव के ही पुत्र के विभिन्न नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा।

—सम्बुद्धि व चार अध्याय पृ १०६

गोन्दर्य ही मच्चा सौन्दर्य है। भावना का वेग बढ़ा, कर्म-मल को धोकर वे केवल ज्ञानी बन गये।^{१५५}

श्रीमद् भागवतकार ने सम्राट् भरत का जीवन कुछ अन्य रूप में चित्रित किया है। राजर्षि भरत मारी पृथ्वी का राज भोगकर यन में घले गये और वहाँ तपस्या के द्वारा भगवान् की उपासना की और तीन जन्मों में भगवत्स्मृति को प्राप्त हुए।^{१५६}

जैन दृष्टि में भगवान् के मी ही पुत्रों ने तथा ब्राह्मी मुन्दरी दानो पुत्रियों ने श्रमगत स्वकीकार किया और उत्कृष्ट माधना कर दीवत्य

२१६ आयगपगपेगो भग्ने गज्ज व भग्गुलीअग्ग ।

गगाग उग्गुअण गग्गो नाण विसा व ॥

—आवश्यक नियुक्ति गा० ८३६

(११) अह अग्या कयाणि गग्गाम्भकारविभूगिता आयमधग्ग अतीति, तत्त्व य गग्गमिआ पुरिमा दीमति, तग्ग एव पेच्छमाणग्ग भग्गुअज्ज पटिय, त व तण ण नाय पटिय, एव तस्स पणोत्तरम जाहे त अगुल पसोएति आव सा अगुली न सोहति तेण अगुलीअज्जण विणा, ताहे पेच्छति पटिय, ताह गज्जमपि अबलेति, एव एवरेक्क आभग्गु अवगोणेण भग्गणि अवणीत्ताणि, ताहे अग्गाग पेच्छति उच्चियपउम व पउमग्ग अनोभमाण पेच्छड । पच्छा अणति—आगतु गहि दव्याः विभूगित इम गगीग्गति, एत्थ सत्तेगमावप्पो । इम व एव गत गगीग्ग, एव चित्तेमावग्ग ईहावृत्ता गग्गणगवेसण गग्गमाणग्ग अपुज्जग्गु अग्गु अग्गुपनिट्ठो केवलण्णण उपाति ।

—आवश्यक चूर्णि, पृ० २२७

(ग) आवस्या मनयगिग्वृत्ति पृ० २८६ ।

२८७ ग भुत्तभावा त्यक्खेमा निमंतग्गपमा अग्गि ।

अग्गीनत्तत्तदग्गो लभ वे जन्मभिग्गिभि ॥

—भागवत ११।२।१८ पृ० ७११

प्राप्त किया।^{२९८} श्रीमद्भागवत के अभिमतानुसार सौ पुत्रों में से कवि हरि अत्रि प्रबुद्ध पिप्पसायन आविर्होत्र द्रुमिल, चमस, और करभाजन—ये नौ आत्म विद्याविशारद पुत्र वातरशन भ्रमण बने।^{२९९}

भगवान् के स्रष्टा में

भगवान् के आध्यात्मिक पावन प्रवचनों को श्रवण करके भगवान् के मध्य में धारासी हुआ भ्रमण बने।^{३००} तीन लाख भ्रमणियाँ बनी,^{३०१}

२९८ आवश्यक निरुक्ति या ४८-३४९ मल वृ० पृ २३१-३२१

२९९ नानामन् महाभावा धुनयोद्बर्धयन्ति ।

भ्रमणा वातरसना आत्मविद्याविशारदा ॥

कविहरिदन्तरिण प्रबुद्ध पिप्पसायन ।

आविर्होत्रोऽह द्रुमिलचमस करभाजन ॥

—भागवत ११।२।५ - २१

१ (क) समवावाङ् ८४

(ख) आवश्यक नि या १७८ मल वृ प ७ ७

(ग) जम्बूद्वीप प्रगप्ति

(घ) उत्तमश्रेणपामोक्ताया वतरामीह समवावाङ्सीमा उक्कोत्तिमा सममपया ह्याया ।

—कल्पसूत्र सू १६७ पृ ३८

(ङ) निपटि १।९ ।

२ १ बभौसुन्दरिपामोक्ताया अजियारु तिन्नि समवावाङ्सीमा उक्कोत्तिमा अजियारुपया ह्याया ।

—कल्पसूत्र सू १६७ पृ ३८

(ल) आवश्यक मल वृ प २ ८ या २८२

(ग) जम्बूद्वीपप्रगप्ति पृ ८७ अमोल

(घ) निपटि १।९

तीन लाख पाँच हजार श्रावक वने^{३०२} और पाँच लाख चोपन हजार श्राविकाएँ हुईं ।^{३०३}

भगवान् ऋषभदेव के श्रमण चौरासी भागो मे विभक्त थे । वे विभाग गण के नाम से पहचाने जाते थे । इन गणों का नेतृत्व करने वाले गणवर कहलाते थे, जिनकी संख्या चौरासी थी । श्रमण-श्रमणियों की सम्पूर्ण व्यवस्था इनके ग्रहीत थी ।

धार्मिक प्रवचन करना, अन्य तीर्थिक या अपनं जिन्यों के प्रश्नों का समाधान करना और धार्मिक नियमोपनियम का परिज्ञान कराना—ये कार्य भ० ऋषभदेव के अधीन थे और शेष कार्य गणवरों के ।

गुण की दृष्टि से श्री ऋषभदेव के श्रमणों को सात विभागो मे विभक्त कर सकते हैं । (१) केवलज्ञानी, (२) मन पर्यायज्ञानी (३) अवधिज्ञानी (४) वैश्रियार्थिक, (५) चतुर्दणपूर्वी (६) वादी (७) सामान्य साधु ।

केवल ज्ञानी अथवा पूर्ण ज्ञानियों की संख्या बीस हजार थी ।^{३०४} ये प्रथम श्रेणी के ज्ञानी श्रमण थे । श्री ऋषभदेव के

३०२ (क) उभमस्स ए सेज्जमपाभोक्खाण समणोवासगणं तिमिं सधमाहस्सीओ पच सहस्सा उक्कोसिया समणोवामयसपया होत्था ।

—कल्पसूत्र० १६७। पृ० ५८

(ख) जम्भूद्वीप प्रज्जन्ति० पृ० ८७ अमो०
३०३ उभमस्स ए सुभदापाभोक्खाण मगणोवासियाण पच समसाहस्सीओ षडप्पम च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासिया ।

—कल्पसूत्र० सू० १६७ पृ० ५८, पुण्यवि० स०

(ग) समवायाद्वा ।

(घ) लोकप्रकाश ।

(ङ) आवश्यक निवृत्ति गा० २८८

३०४ उभमस्सण बीससहस्सा केवलजानीण उक्कोसिया ।

—कल्पसूत्र० सू० १६७ पृ० ५८

ममान ही इनको भी पूरा ज्ञान था। ये धर्मोपदेश भी प्रदान करते थे।

दूसरी श्रृंखला के धर्मण भन परमविज्ञानी अर्थात् मनोवैज्ञानिक थे। ये समनस्क प्राणियों के मानसिक भावों के परिज्ञाता थे। इनकी संख्या बारह हजार छह सौ पचास थी।^{१५५}

तृतीय श्रृंखला के धर्मण अवधिज्ञानी थे। अवधि का अर्थ-सीमा है। अधिज्ञान का विषय केवल रूपी पदार्थ है। जो रूप रस गंध और स्पर्श युक्त समस्त रूपी पदार्थों (पुत्रवर्गों) के परिज्ञाता थे। इनकी संख्या भी हजार थी।^{१५६}

चतुर्थ श्रृंखला के साधक वनियद्विक थे। अर्थात् योगसिद्धि प्राप्त धर्मण थे। जो प्रायः तप जप व ध्यान में तल्लीन रहते थे। इन धर्मणों की संख्या बीस हजार छह सौ थी।^{१५७}

पंचम श्रृंखला के धर्मण चतुर्वक्ष पूर्वी थे। ये सम्पूर्ण अक्षर ज्ञान में

(क) समवायाङ्ग

(ग) साकप्रकाश

१ ५ उममस्त एव वारससहस्रा ज्ञान सया पचासा विउलमईणं
अहङ्गादेवु बीवममुह सु सत्रीण पचियियाण पञ्जसगाण मणोपए
भावे ज्ञानमाणाण पासमाणाण उक्कोमिवा विपुलमइसपया होत्था ।

—कल्पवृक्ष सू १९७ पृ ५५-५६

(ग) समवायाङ्ग

१ ६ उममस्त एव नव सहस्रा ओहिवाणीण उक्को ।

—इत्थ सू १९७ पृ ५५

(क) समवायाङ्ग ।

(ग) सोमप्रकाश ।

१ ७ उममस्त एव बीमसहस्रा ज्ञान सया वेउन्निवाण उक्कोसिया ।

—इत्थवृक्ष-सू ५५

पारगत थे। इनका कार्य था शिष्यों को शास्त्राभ्यास कराना। इनकी सख्या सैंतालीस सौ पचास थी।^{३०८}

छद्म श्रीग्री के श्रमण वादी थे। ये तर्क और दार्शनिक सिद्धान्तों की चर्चा करने में प्रवीण थे। अन्य तीर्थियों के साथ शास्त्रार्थ कर उन्हें ग्राह्यत वर्ग के अनुकूल बनाना, इनका प्रमुख कार्य था। इनकी सख्या बारह हजार छह सौ पचास थी।^{३०९}

मातवी श्रीग्री में वे भामान्य श्रमण थे जो अध्ययन, तप, ध्यान तथा मेवा-गुह्यपा किया करते थे।

इस प्रकार श्री ऋषभदेव की सच-व्यवस्था सुगठित और वैज्ञानिक थी। धार्मिक राज्य की सुव्यवस्था करने में वे सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र थे। लक्षाधिक व्यक्ति उनके अनुयायी थे और उनका उन पर अखण्ड प्रभुत्व था।

भगवान् श्री ऋषभदेव सर्वज्ञ होने के पश्चान् जीवन के सान्ध्य तक आर्यावर्त में पैदल घूम-घूमकर आत्म-विद्या की अखण्ड उद्योति जगाते रहे। देशना रूपी जल में जगन् की दुःस्वामिनी को नमन करते रहे।^{३१०} जन-जन के अन्तर्मानस में त्याग-निष्ठा व सयम-प्रतिष्ठा उत्पन्न करते रहे।

निर्वाण

चृतीय आरे के तीन वर्ष और साढ़े आठ मास अवशेष रहने पर भगवान् दम सहस्र श्रमणों के साथ अष्टापद पर्वत पर आरूढ़ हुए।

३०८ उसभस्स ए० चत्तारि महम्मो मस सया पञ्जासा चोद्सपुब्बोण्ण
अजिण्णए जिनगकामाण उक्कोसिया चोद्सपुब्बिसपया होत्था।

—कल्पसूत्र सू० १६७ पृ० ५८

३०९ उसभस्म ए वाग्ग सहम्मो उन्ध सया पञ्जामा वार्दण्ण०

—कल्पसूत्र १६४, १६६

३१० वपंति निचत्ति देशनाज्जेन,

दु स्याग्निना दग्ध जगदिति।

चतुश्च भक्त से आत्मा को तापित करते हुए अभिजित नभश्च के योग में पर्यङ्कासन में स्थित शुक्ल ध्यान के द्वारा वेदनीय कम प्रापुष्य चम नाम कर्म और गोत्र-कर्म को नष्ट कर सदा-सर्वदा के लिए अक्षर अजर अमर पद को प्राप्त हुए ।^{३१} जन परिभाषा में इसे निर्वाण या

१' अङ्गरासीह पुष्पसमसहस्राह सन्वाज्य पासइता सीणे
 उपणि-आउपमामगोम इमीन आमपिणीए सुममदूममाए समाए
 अहुविन्कताए तिहि वामेहि अङ्गनवमेहि य मार्गेह ससेहि उप्प
 अट्ठावयमेससिहरसि वसहि अन्नगारसहस्रहि सद्धि बोहसमेण भत्ताए
 अपाणएण अभिइणा नक्खतए जोगमुवागएण पुष्पण्हकाससमयसि
 सपणियवनिमामे वासगा विइक्कने जाव मज्जदुवजप्पहाणे ।

—अपसूत्र सू १६६ पृ ५६

(क) नि-वाचमतत्तिरिया ता बोहममम पन्नाहस्म ।
 ससाज मामिण्ण वीरमिन्नवत्स सद्धु ए ॥
 अट्ठावय-अपु-उमेत-वावा-सम्मेषसेसमिह्मेद ।
 उत्तम वसुमुज्ज मेमी वीरो सेसा य मिद्धिगया ॥

—आवश्यक लिङ्गुत्ति वा ३२५-३२६

वसहि महस्मेहसमे ससा उ सहस्सपरिवुडा सिद्धा ।

—आवश्यक नि गा० ३६३

(ग) एव च सामी भिहरमाणो बोवणग पुष्पमयसहस्र केवलपरिमाण
 पाउणिता पुनरपि अट्ठावए पब्बए समोसडो तत्थ बोहसमेण
 भत्तेण पाओवमत्तो तत्थ माहवहुसत्तेरसीपक्खेण वसहि
 अन्नगारसहस्रेहि सद्धि नपरिवहे अपलिबकणिसम्भो पुष्पण्हकास
 समयमि अभिइणा नक्खराए सुममदूममाए एणूणणउत्तीह
 पक्खेहि सर्गहि सीणे वाउव नामे योत्त वयणिज्जे वासगते
 जाव मज्जदुवजप्पहाणे ।

चुलनीतीए निचनरो

ममममहस्महि परिवडो मय्य ।

इमाद्ध महम्महि मम

निब्बानममुत्तर पत्ता ॥

—आवश्यक जूनि पृ २२१

परिनिर्वाण कहा है। शिव पुराण ने अष्टा पद पर्वत के स्थान पर कैलाश पर्वत का उल्लेख किया है।^{३१२}

भगवान् श्री ऋषभदेव की निर्वाणतिथि जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति,^{३१३} कल्पसूत्र,^{३१४} त्रिपट्टि जलाका पुरुष चरित्र^{३१५} के अनुसार माघ कृष्ण

(घ) दीक्षाकालान् पूर्वलक्ष, अपयित्वा तस्य प्रभु ।
शास्त्रा स्वभोक्षकास्त च, प्रतस्येऽप्यापव प्रति ॥
क्षीलमप्यापव प्राप, क्रमेण सपरिच्छद ।
निर्वाणमौघसौपानमिवाऽऽरोह्य च तं प्रभु ॥
सम मुनीनां दशभिः सहस्रं प्रत्यपद्यत ।
चतुदशेन तपसा, पादपोषणम प्रभु ॥

—त्रिपट्टि० १।६।४५६ से ४६१

(ङ) दशह अगारसहस्रेहि सति सपरिबुद्धे अट्टावयसेलसिहरसि
चोदसमेण भर्तेश्च अप्याएएण सपलिभकासये निसण्णे पुण्वण्ह
कालसमयसि अभिइणा अत्तसेण जोगमुवागएण सुसमवुत्स-
माए एणुणववइए पवयेहि सेनेहि कालगए वीइक्कते जाव
मज्जपुक्कप्पहीणे ।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सू० ४८ पृ० ६१

३१२ कैलासे पर्वते रम्भे,

वृषभोऽयं त्रिनेश्वर ।

अकार स्वावतारश्च

सर्वज्ञ सर्वग शिव ॥

—शिवपुराण ५६

३१३ जे से हेमताण तच्चे भासे पचमे पक्खे माहवहुत्ते तस्स ए माहवहुत्तस्स
तेरसीपक्खेण ।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सू० ४८, पृ० ६१

३१४ जे स हेमताण तच्चेमामे पचमे पक्खे माहवहुत्ते तस्स ए माहवहुत्तस्स
तेरसीपक्खेण ।

—कल्पसूत्र, सू० १६६, पृ० ५६

३१५ त्रिपट्टि० १।६

त्रयोन्गी है और नित्योपपन्नति^{३१८} व महापुराण^{३१} के अनुसार माघकृष्ण चतुदशी है।

विज्ञा का मन्त्रम्य है कि उस दिन थमणा न शिवगति प्राप्त भगवान् की सम्मृति म दिन म उपवास रखा और रात्रि भर धम जागरण किया। अतः वह तिथि शिवरात्रि क नाम से प्रसिद्ध हुई। शिव मोक्ष निर्वाण—ये सभी पर्यायवाची शब्द हैं।

ईशान संहिता म लिखा है कि माघ कृष्ण चतुदशी की महानिशा म कोटिसूर्यप्रभोपम भगवान् आदिदेव शिवगति प्राप्त हो जाने से शिव—इम लिंग से प्रकट हुए। जो निर्वाण वे पूर्व आदिदेव पड़े जाते थे वे अब शिवपद प्राप्त हो जाने से शिव कहलाने लग।^१

उत्तर प्रान्त म शिव रात्रि पक्ष फाल्गुन कृष्ण चतुदशी को मनाया जाता है तो दक्षिण प्रान्त म माघकृष्ण चतुदशी का। इस भेद का कारण यह है कि उत्तर प्रान्त म माघ का प्रारम्भ कृष्ण पक्ष स मानते हैं और दक्षिण प्रान्त मे शुक्ल पक्ष स। इस दृष्टि स दक्षिण प्रान्तीय माघ कृष्ण चतुदशी उत्तर प्रान्त म फाल्गुन कृष्ण चतुदशी हो जाती ह। कालमाधवीय नागर खण्ड मे प्रस्तुत मासवर्णम्य का समन्वय करते हुए स्पष्ट लिखा है कि दक्षिणात्य मान्य के माघ मास

३१९ माघस्त किञ्चि चोदति पुष्पण्हे विषयजम्भनकलते भट्टावधम्मि उत्तहो अनुदेण सम मओजानि।

—तिलायपण्णति

३१७ यत्तुहिनकभाउनि माहमामि सूरम्भनिसणचउत्तीहि निन्वइ तित्वकरि पुरिससीहि।

—महापुराण ३७।३

३१८ माघे कृष्णचतुदश्यामादित्रो महानिशि।
चिर्वालिगताद्भूत कोटिसूर्यसमप्रभ ॥
तत्कालम्यापिनी आह्वा शिवरात्रिवते तिथि।

—ईशान संहिता

के शेष अथवा अन्तिम पक्ष की, और उत्तर प्रान्तीय मानव के फाल्गुन के प्रथम मास की कृष्ण चतुर्दशी जिवगान्ति कही गई है।^{३१}

पूर्थ बताया जा चुका है कि ऋषभदेव का महत्त्व केवल श्रमण परम्परा में ही नहीं अपितु ब्राह्मणपरम्परा में भी रहा है। वहाँ उन्हें धाराध्यदेव मानकर मुक्त कठ से गुणानुवाद किया गया है। सुप्रसिद्ध वैदिक साहित्य के विद्वान् प्रो० विरुपाक्ष एम ए वेदतीर्थ और आचार्य विनोबा भावे जैसे बहुश्रुत विचारक ऋग्वेद आदि में ऋषभदेव की मृत्ति के स्वर सुनते हैं।⁺

श्री रामचारीसिंह दिनकर भ० श्री ऋषभदेव के सम्बन्ध में लिखते हैं—“मोहन जोधड़ो” की खुदाई में योग के प्रमाण मिले हैं। और जैनमार्ग के आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव दे, जिनके साथ योग और वैराग्य की परम्परा उसी प्रकार लिपटी हुई है जैसे कालान्तर में शिव के साथ समन्वित हो गई। इन दृष्टि से कई जैन विद्वानों का यह मानना समुचित युक्त नहीं दिखता कि ऋषभदेव वेदोल्लिखित होने पर भी वेद पूर्वक ह।^ॐ

डाक्टर जिम्मर लिखते हैं—“आज प्राग् ऐतिहासिक काल के महापुरुषों के अस्तित्व को सिद्ध करने के साधन उपलब्ध नहीं हैं, इसका अर्थ यह नहीं कि वे महापुरुष हुए ही नहीं। इस अवसर्पिणी काल में भोग-भूमि के अन्त में अर्थात् पापाणकाल के अवसान पर कृपिकाल के प्रारम्भ में पहले तीर्थङ्कर ऋषभ हुए। जिन्होंने मानव को सम्भता का पाठ पढ़ाया, उनके पश्चात् और भी तीर्थङ्कर हुए,

३१६ माघमासस्य शेषे या प्रथमे फाल्गुणस्य च ।

कृष्णा चतुर्दशी सा तु शिवरात्रि प्रकीर्तिता ॥

—कालमाघवीय नागर खण्ड

† पूर्वं दत्तवृत्त—उपाध्याय अमरमुनिजी महाराज, भुरदेव श्री रत्नमुनि ।

ॐ आजकल, मार्च १९६२ पृ० ८ ।

जिनम से कई का जलम्ब वेदादि ग्रन्थो म भी मिलता है। अन जन धम भगवान् ऋषमदेव के काल से चला आ रहा है। X

अग्वेद म भगवान् श्री ऋषम को पूवज्ञान का प्रतिपादक और दुश्मा का नाश करने वाला बतलाते हुए कहा है— जसे जल से भरा मेघ वर्षा का मुख्य स्रोत है जो पृथ्वी की प्यास को बुझा देता है उसी प्रकार पूर्वी ज्ञान के प्रतिपादक वृषभ [ऋषभ] महान् है उनका धामन बर दे। उनके शासन मे ऋषि परम्परा से प्राप्त पूव का ज्ञान आत्मा के शत्रुओं—क्रोधादि का विध्वंसक हो। दोनों [ससारी और मुक्त] आत्माएँ अपने ही आत्मगुणों से चमकती हैं। भक्त व राजा है—वे पूरा ज्ञान के आगार हैं और आत्म-वर्तन नहीं होत देते। १

वदिव ऋषि भक्ति-भावना से विभोर होकर उस महाप्रभु की स्तुति करता हुआ कहता है—हे आत्मदृष्टा प्रभो! परम सुख पान के लिए मैं तेरी शरण मे आना चाहता हूँ। क्योंकि तेरा उपदेश और तेरी वाणी शक्तिशाली है—उनको मैं अवधारण करता हूँ। हे प्रभो! सभी मनुष्या और देवों मे तुम्ही पहले पूववाया [पूर्वगत ज्ञान के प्रतिपादक] हो। १

X श्री फिलॉनफीज याव इच्छिया पृ २१७ का विम्वर।

(क) अहिंसावाणी वप १२ अक १ पृ ३७१ आकर नामताप्रसाव के लेख म भी उद्धृत।

१२ असूतपूर्वा वृषभो ध्यायनिमा अरय दुरभ शन्ति पूर्वी।
दिबो न पाता निदपस्य नीमि शत्र राजाना प्रदिवोदपादे ॥

—ऋग्वेद ५२-१८

१२१ मसस्य ॥ तीव्रस्य प्रकृतिमिर्गम वाचमृताय सुपन्।
इन्द्र नितीमामास मानुषीना विद्या देवी नामुत पूववाया ॥

—ऋग्वेद २/३४/२

“आत्मा ही परमात्मा है”^{३२८}— यह जैन दर्शन का मूल सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को ऋग्वेद के शब्दों में भगवान् श्री ऋषभदेव ने इस रूप में प्रतिपादित किया—“मन, वचन, काय तीनों योगों से बद्ध [सयत] वृषभ ने घोषणा की कि महादेव अर्थात् परमात्मा मर्त्यों में निवास करता है।”^{३२९} उन्होंने स्वयं कठोर तपश्चरणरूप साधना कर वह भादर्श जन-नयन के समक्ष प्रस्तुत किया। एतदर्थ ही ऋग्वेद के मेधावी महर्षि ने लिखा कि—“ऋषभ स्वयं आदिपुरुष थे जिन्होंने सब से प्रथम मर्त्यादशा में देवत्व की प्राप्ति की थी।”^{३३०}

अथर्ववेद का ऋषि मानवों को ऋषभदेव का आह्वान करने के लिए यह प्रेरणा करता है कि—“पापों से मुक्त पूजनीय देवताओं में सर्व प्रथम तथा भवसागर के पीत को मैं हृदय से आह्वान करता हूँ। हे सहस्रर बन्धुओं! तुम आत्मीय श्रद्धा द्वारा उसके आत्मबल और तेज की धारण करो।”^{३३१} क्योंकि वे प्रेम के राजा हैं उन्होंने

३२२ वे क्षप्पा से परमप्पा ।

(ख) मगज-मुण्ठाणोहि य,

चउदसाह वह असुदणया ।

विभोया ससारी,

सम्भे सुद्धा ह सुदणया ॥

—अथ्यसप्तह १।१३

(ग) सदा मुक्त कारणपरमात्मान जानाति ।

—नियमसार, तात्पर्यवृत्ति गा० ६९

३२३ त्रिधा वदधो वृषभो रोखीछी ।

महादेवो मर्त्या आविवेश ॥

—ऋग्वेद ४।५८।३

३२४ तन्मत्स्यं देवत्वसजातमग्न ।

—ऋग्वेद ३।१२०

३२५ अहा मुच वृषभ यजियाम विराजन्त प्रथममन्वराणाम् ।

अप न पातमश्चिना हुवे मिय इन्द्रियेण तमिन्द्रिय दत्तमोज ।।

—अथर्ववेद कारिका १६।४२।४

उस सप की स्थापना की है जिसमें पशु भी मानव के समान माने जाते थे और उनको कोई भी मार नहीं सकता था ।^{३०}

श्रीमद्भागवत के अनुसार श्री ऋषभ का जन्म रजोगुणी जनों को कवच की शिक्षा देने के लिए हुआ था ।^{३१} जिन्होंने विषयभोगों की अभिलाषा करने के कारण अपने वास्तविक धर्म से भूल बिसरे भानवों का कल्याण निभय आत्म-लोभ का उपदेश दिया और जो स्वयं निरन्तर अनुभव करने वाले आत्म-स्वरूप की प्राप्ति के द्वारा सब प्रकार की तृष्णा से मुक्त थे उन भगवान् श्री ऋषभदेव को नमस्कार है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भागवत में ही रहा किन्तु हम पुराण माण्डूकेय पुराण अग्नि पुराण आदि शक्ति ग्रन्थों में उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण गाथाएँ उद्धृष्ट हैं ।

बौद्ध ग्रन्थ आर्द्र मज्झिमी सूत्रकल्प में भारत के आदि सम्राटों में नामिपुत्र ऋषभ और ऋषभ पुत्र भरत की गणना की गई है । उन्होंने हिमालय से सिद्धि प्राप्त की^{३२} वे बतों को पालन में रह

१२६ तास्य पशून् समानान् हिमस्ति ।

—अथर्ववेद

१२७ अयमवतारा राजतापध्नुतकमत्स्योपविशन्मार्गम् ।

—श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध अध्याय ६

१२८ नित्यानुसृतनिजनामनिवृत्ततृष्ण
धर्मस्यतद्रचनया निरनुत्तमुद्ध ।
लोकस्य यः कल्याणमयमात्मलीक-
माख्यातमो जगते ऋषयाय तस्मै ॥

—श्रीमद् भागवत १।६।१८।१६६

१२९ जन हाँट से सिद्धि-स्थल बघटापड़ है हिमालय नहीं ।

—मेखन

थे। वे ही निग्रन्थ तीर्थङ्कर ऋषभ जैनो के आप्तदेव थे।^{३२७} धम्म पद में ऋषभ को सर्वश्रेष्ठ वीर कहा है।^{३३१}

भारत के अतिरिक्त बाह्य देशों में भी भगवान् ऋषभदेव का विराट् व्यक्तित्व विविध रूपों में चमका है। प्रथम उन्होंने कृषिकला का परिज्ञान कराया, अतः वे "कृषि देवता" हैं। आधुनिक विद्वान् उन्हें "एग्रीकल्चरएज" मानते हैं।^{३३२} देशनाखूँपी वर्षा करने से वे "वर्षा के देवता" कहे गये हैं। केवल ज्ञानी होने से सूर्यदेव के रूप में मान्य हैं।

इस प्रकार भगवान् श्री ऋषभदेव का जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व विश्व के कोटि-कोटि मानवों के लिए कल्याणरूप, मंगलरूप और वरदानरूप रहा है। वे श्रमण सस्कृति और ब्राह्मण सस्कृति के प्रादि पुरुष हैं। भारतीय सस्कृति के ही नहीं, मानव सस्कृति के प्राद्य निर्माता हैं। उनके हिमालयसदृश विराट् जीवन पर दृष्टि डालते-डालते मानव का सिर ऊँचा हो जाता है और अन्तर भाव श्रद्धा से झुक जाता है।



३३० भजापत्ते सुतो नामि तस्यापि आगमुच्यति ।
नामिनो ऋषभपुत्रो वै सिद्धकर्म दृढमत ॥
तस्यापि मणिचरो यस्तु सिद्धो हेमवेत गिरो ।
ऋषभस्य भरत पुत्र सोऽपि मज्झान तदा जपेत् ॥
निग्रन्थ तीर्थङ्कर ऋषभ निग्रन्थ रूपि

आर्यमज्झिमा सुलकल्प स्तो० ३६०-३६१-३६२

३३१ उसम पनर वीर ।

—धम्मपद ४२२

३३२ व्यास और अहिम्मा—म० ऋषभ विदोपाङ्ग, ले० डा० राकसिया
आचार्य मिथु स्मृति ग्रन्थ, द्वितीय खण्ड पृ० ८



भादिम पुष्पीनायन,
 भादिम निष्परित्नाम् ।
 भादिम तीक्ष्णाय च
 ऋषयस्त्वामिह स्तुम ॥

—आचार्य हेमचन्द्र

भादिपुष्प भादीय विन
 भादि पुष्पि करतार ।
 धर्मपुरधर परम पुष्प
 नमो भादि अवतार ॥

—राज्य हेमराज



बहत्तर कलाओं के नाम

- १ सह—सल सिमने की कला ।
- २ गरिणम—गणित ।
- ३ क्य—रूप बनाने की कला ।
- ४ मद—नाच करने की कला ।
- ५ गीत—गीत बाने की कला ।
- ६ वाह्य—वाद्य बनाने की कला ।
- ७ सरगम—स्वर जानने की कला ।
- ८ पुनसरम—ढोल आदि वाद्य बनाने की कला ।
- ९ समताल—ताल देना ।
- १० जूग—जूना खेलने की कला ।
- ११ जणवाम—नार्तालाप की कला ।
- १२ पोमल्लक—नगर के सरक्षण की कला ।
- १३ भट्ठावम—पागा खेलने की कला ।
- १४ दगमट्टम—गानी और मिट्टी व सामग्र्य व वस्तु बनान की कला ।
- १५ भद्रविहि—भद्र उत्पन्न करने की कला ।
- १६ पाणविहि—पानी उत्पन्न करना और उस कुछ करने की कला ।
- १७ वत्थविहि—वस्त्र बनाने की कला ।
- १८ समणविहि—गम्या निर्माण करने की कला ।
- १९ अज्ज—स हस्त मापा व कविता निर्माण की कला ।
- २० पहेलिय—ग्रहेलिका निर्माण की कला ।
- २१ भागहिया—छन्द विधाय बनान की कला ।
- २२ गह—प्राकृत भाषा व भाषा निर्माण की कला ।
- २३ सिलोय—दशोन बनाने की कला ।
- २४ मध जुत्ति—मुगलिन वगैर बनाने की कला ।
- २५ मधुमिर्द—मधुगणि छत्र वगैर बनान की कला ।

- २६ श्राभरणविहि—अलंकार निर्माण की तथा धारण की कला ।
- २७ तरुणीपडिकम्म—स्त्री को जिघांसे देने की कला ।
- २८ इत्थीलक्षण—स्त्री के लक्षण जानने की कला ।
- २९ पुरिमलक्षण—पुरुष के लक्षण जानने की कला ।
- ३० हयलक्षण—घोड़े के लक्षण जानने की कला ।
- ३१ गयलक्षण—हस्ती के लक्षण जानने की कला ।
- ३२ गोलक्षण—गाय के लक्षण जानने की कला ।
- ३३ कुक्कुडलक्षण—कुक्कुट के लक्षण जानने की कला ।
- ३४ मिढयलक्षण—मेढे के लक्षण जानने की कला ।
- ३५ चक्रलक्षण—चक्र-लक्षण जानने की कला ।
- ३६ छत्तलक्षण—छत्र-लक्षण जानने की कला ।
- ३७ दण्डलक्षण—दण्ड लक्षण जानने की कला ।
- ३८ प्रसिलक्षण—तलवार के लक्षण जानने की कला ।
- ३९ मणिलक्षण—मणि-लक्षण जानने की कला ।
- ४० कारणिलक्षण—रुक्मिणी-चक्रवर्ती के ग्लानियेय के लक्षण
को जानने की कला ।
- ४१ चम्मलक्षण—चर्म-लक्षण जानने की कला ।
- ४२ चवलक्षण—चन्द्र लक्षण जानने की कला ।
- ४३ सूरचरिय—सूर्य आदि की गति जानने की कला ।
- ४४ राहुचरिय—राहु आदि की गति जानने की कला ।
- ४५ गह्वरिय—ग्रहों की गति जानने की कला ।
- ४६ सोभागकर—सोभाग्य का ज्ञान ।
- ४७ दोभागकर—दुर्भाग्य का ज्ञान ।
- ४८ विज्जागय—गोहिणी, प्रवृत्ति आदि विद्या सम्बन्धी ज्ञान ।
- ४९ मतमय—मन्त्र साधना आदि का ज्ञान ।
- ५० रहस्मय—गुप्त वस्तु को जानने का ज्ञान ।
- ५१ समास—प्रत्येक वस्तु के वृत्त का ज्ञान ।
- ५२ चार—सैन्य का प्रमाण आदि जानना ।
- ५३ पडिचार—मेना को रणक्षेत्र में उतारने की कला ।
- ५४ वूह—व्यूह रचने की कला ।
- ५५ पडिवूह—प्रतिव्यूह रचने की कला (व्यूह के सामने उसे पराजित
करने वाले व्यूह की रचना)

- १६ लघावारमार्ग—सेना के पड़ाव का प्रमाण जानना ।
 १७ नगरमार्ग—नगर का प्रमाण जानने की कला ।
 १८ वत्थमार्ग—वस्तु का प्रमाण जानने की कला ।
 १९ लघावारनिवेस—सेना का पड़ाव आदि कहीं डालना इत्यादि का परिज्ञान ।
 २० वत्थनिवेस—प्रत्येक वस्तु का स्थापन कराने की कला ।
 २१ नगरनिवेस—नगर निर्माण का ज्ञान ।
 २२ ईसत्थ—ईश्वर को मह्य करने की कला ।
 २३ छरुप्पशाय तनवार आदि की मूढ आदि बनाने की कला ।
 २४ ग्रामसिक्ख—ग्राम सिखा ।
 २५ हत्थिसिक्ख—हस्ती सिखा ।
 २६ धणुवेस—धनुर्वेद ।
 २७ हिरण्यपाण सुवम्भपाण मणिपाण धातुपाण—हिरण्यपाक सुवम्भपाक मणिपाक धातुपाक बनाने की कला ।
 २८ बाहुजुड वडजुड मुटिठ्ठजुड मट्ठिजुड जुड निजुड जुडाइजुड—बाहु मुड वड मुड मुटिठ्ठ मुड मट्ठि मुड निजुड मुडाइजुड बनाने की कला ।
 २९ सुत्ताखड नासियाखड वट्टखड धम्मखड धम्मखड—सूत बनाने की गली बनाने की पद लेखने की वस्तु के स्वरूप जानने की कला बनाने आदि की कला ।
 ३० पत्तम्भेज्ज—वडगम्भेज्ज—पत्र लेखन कृताङ्गविरोध लेखने की कला ।
 ३१ सजीव निज्जीव—सजीवन निर्वाचन ।
 ३२ सट्ठएरय—पत्ती के पत्र से सुवासुय जायने की कला ।

(क) समवामाङ्ग सूत्र समवाय ७२

(घ) आयाधम्मवहा पृ २१

(ग) राजप्रवनीय सूत्र पत्र ३४

(घ) औपपातिक सूत्र ४ पत्र १८३

(ङ) कपमून मुद्राभिका टीका

चौंसठ कलाओं के नाम

१	नृत्य ✓	२७	हृष्यगज पगीक्षण
२	औचित्य	२८	पुरुष ग्रीष्मगण
३	चित्र ✓	२९	हेमरत्न भेद
४	वादिभ	३०	अष्टादश विधि-परिच्छेद
५	मन्त्र ✓	३१	तत्कालगुडि
६	तन्त्र ✓	३२	वस्तुमिद्वि
७	ज्ञान ✓	३३	कामविक्रिया
८	विज्ञान ✓	३४	वैद्यक क्रिया
९	वस्त्र	३५	कुम्भधर्म
१०	जलन्तम्भ	३६	मात्रि-धर्म
११	गीतमान	३७	अवनयान
१२	ताममान	३८	भूर्ययोग
१३	मेषटुगिट	३९	हरतसाधक
१४	कलाकृगिट	४०	वधनपाठक
१५	आराधनगेषक	४१	भोग्यविधि
१६	आफागेषक	४२	आणिष्यविधि
१७	अमविचार	४३	मुखमण्डन
१८	शकुनसार	४४	शासितमण्डन
१९	त्रियाकरष	४५	कथाकथन
२०	सम्पत्त वस्त्र	४६	पुष्पमन्थन
२१	प्रासाद नीति	४७	वक्रोक्ति
२२	धर्मोक्ति	४८	काव्य शक्ति
२३	वर्णिकावृद्धि	४९	स्फारविधिषेध
२४	सुवर्णसिद्धि	५०	गर्वभाषाविशेष
२५	सुरमिर्तकगण	५१	अमिवानजान
२६	सीतामचरण	५२	भूषणपरिधान

५३	अत्योपचार	५६	बीजानाद
५४	गुहाचार	६	वितण्डावाद
५५	व्याकरण	६१	अच्छुविचार
५६	परनिराकरण	६२	लोकव्यवहार
५७	रन्ध्र	६३	अन्त्याश्रिका
५८	केशवन्धन	६४	प्रश्नप्रहेलिका

—वम्बूदीप प्रसिद्धि वसुस्कार २ टीका पत्र १३६-२ १४०-१

—कल्पसूत्र सुवोधिका टीका ।



श्री ऋषभदेव के पुत्र और पुत्रियों के नाम

१ भरत ✓	२८ माणध
२ बाहुवन्धी ✓	२९ रिदं
३ घट्ट	३० भगम
४ विषयकर्मा	३१ दगाण
५ विमान ✓	३२ गम्भीर
६ सुलक्षण,	३३ रगुणमा
७ अमल ✓	३४ सुवर्मा
८ विष्णु	३५ राट्ट
९ न्यातगीति	३६ मुराट
१० यशस्त	३७ दुष्टिकर
११, दत्त	३८ विरिधकर
१२ सागर ✓	३९ गुयध
१३, यशोधर	४० यय द्वीति
१४ अमर	४१ ययम्कर
१५, धर	४२ श्रीतिर
१६ कामदेव	४३ मुण
१७ ध्रुव	४४ श्रमेष
१८ वस्त ✓	४५ विक्रान्त
१९ मन्द ✓	४६ नरोत्तम
२० मूर	४७ चन्द्रमेन
२१ सुनन्द ✓	४८ मङ्गमेन
२२, कुरु	४९ मुसेण
२३ अग ✓	५० मानु
२४ वग ✓	५१ कान्त
२५ कौसल	५२ पुष्पकुल
२६ वीर ✓	५३ श्रीधर
२७, कर्मिण	५४ दुद

५५	सुसुमार	७८	वसु
५६	दुर्वय	७९	सेन
५७	अथवमान	८०	वसिष्ठ
५८	सुधर्मा	८१	असहिचारी
५९	धर्मसेन	८२	अरिचक्र
६०	मानन्दन	८३	कुम्भारन
६१	मानन्द	८४	अथदेव
६२	नन्द	८५	मानदत्त
६३	अपराजित	८६	काश्यप
६४	विश्वसेन	८७	अन
६५	हृदिनेन	८८	श्रीर
६६	अन	८९	सुधमति
६७	विजय	९०	सुमाति
६८	विजयन्त	९१	पञ्चनाभ
६९	प्रभाकर	९२	निह
७०	अरिदत्तन	९३	सुमाति
७१	मान	९४	सम्भव
७२	महाबाहु	९५	सुनाम
७३	दीर्घबाहु	९६	नरदेव
७४	मैत्र	९७	शिराहर
७५	सुधीय	९८	सुतर
७६	विश्व	९९	शरव
७७	वराह	१००	प्रभञ्जन+

विष्णुचर परम्परा के आधारों विचरित के १ १ पुत्र माने हैं और वसन्त
नाम शृंगमदेव दिया है ।

पुत्रियों के नाम—

१—बाह्यी ।

२—सुन्दरी ।

२३

+ (क) वसुधूत किरवावली पत्र १२१-२२

(ख) वसुधूत सुवीरिका टीका व्याख्यान ७ पृ ४६८

क महाराष्ट्र वर्ष १९ पृ ३४६

ग्रन्थ के टिप्पण में प्रयुक्त ग्रन्थों के नाम

- १ आचारङ्ग सूत्र
- २ आवश्यक नियुक्ति—आचार्य भद्रबाहु
- ३ आवश्यक चूणि—जिनदासगणी महत्तर
- ४ आवश्यक नियुक्ति—मलयगिरि वृत्ति
- ५ आवश्यक भाष्य
- ६ आवश्यक हाग्भित्रीया वृत्ति
- ७ आदि पुगण
- ८ अथर्ववेद
- ९ अथर्व मन्त्रिना
- १० उत्तराख्ययन सूत्र
- ११ उत्तर पुगण
- १२ ऋग्वेद
- १३ आर्य मज्झिमी सूत्रकल्प
- १४ अग्निपुराण
- १५ औपपातिक सूत्र
- १६ आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ
- १७ अष्टाध्यायी पाणिनि
- १८ ईशान संहिता
- १९ कल्पसूत्र—आचार्य भद्रबाहु, प० प्र० पुष्पाविज
- २० कल्पसूत्र—कल्पार्थबोधिनी
- २१ कल्पसूत्र—कल्पसुबोधिका टीका—उपाध्याय विनय विजय
- २२ कल्पसूत्र कल्पलता टीका—समय सुन्दर जी
- २३ कल्पसूत्र-कल्पद्रुम कलिका—सदमीवल्लभ
- २४ कल्पसूत्र-कल्पसूत्राच प्रबोधिनी—राजेन्द्र मूरि
- २५ कल्पसूत्र—मणिसायर
- २६ कूम्भपुराण
- २७ कामसौक्त प्रकाश
- २८ काममाधवोय नागर दण्ड

- ६१ शिवपुराण
- ६२ प्रभास पुराण
- ६३ मुनि श्री हजारीयल स्मृतिग्रन्थ—आवर
- ६४ पुराणनाम मग्न—आवर
- ६५ विजयपादस्यम भाष्यवृत्ति
- ६६ हिन्दा विश्वकाप—श्री
- ६७ अश्वद महिमा
- ६८ शुक्ल यजुर्वेद महिमा
- ६९ महाभारत
- ७० भविष्य पुराण
- ७१ साक प्रकाश
- ७२ प्रश्न व्याकरण
- ७३ तत्त्वा ५ सूत्र
- ७४ वायु महापुराण
- ७५ मुण्डकापनिषद्
- ७६ महावीर चरित—गुण
- ७७ महावीर पुराण—आवर
- ७८ उत्तर पुराण—गुणभद्रा
- ७९ वसुदेव हिण्डी
- ८० श्री ऋषभदेव भ० का
- ८१ नारद पुराण
- ८२ विष्णु पुराण
- ८३ गरुड पुराण
- ८४ मार्कण्डेय पुराण
- ८५ लिंग पुराण
- ८६ प्राचीन भारत—गवाड
- ८७ संस्कृति व चार अध्या
- ८८ तिलोय पञ्च
- ८९ त्रिव्य

- २६ चतुर्विंशतिस्तव
 ३ अम्बुद्वीप प्रशस्ति
 ३१ अम्बुद्वीप प्रशस्ति—टीका
 ७ जन रामायण—केसरान्न चौ
 ३ तत्त्वार्थभाष्य
 ४ द्रव्य सङ्घ
 ५ चपट पत्रिका—आचार्य शंकर
 ६ दशवर्कालिक धूर्ति—अमरस्यमिह धूर्ति
 ३० दशवर्कालिक धूर्ति—जिनवासगणी महत्तर
 ८ अमरस्यमिह नाममात्रा
 ३६ नारद पुराण
 ४ निपटिस्तकाका पुरुष चरित—आचार्य हर्षचन्द्र
 ४१ निपटिस्तकाका पुरुष चरित (गुह्यराती भाषान्तर)
 ४२ शायु पुराण
 ४३ ब्रह्माण्ड पुराण
 ४४ नारायण पुराण
 ४५ स्कन्ध पुराण
 ४६ स्थानाङ्ग
 ४७ स्थानाङ्गवृत्ति
 ४८ समवायाङ्ग
 ४९ पञ्चमचरित—विमल कुरि
 ५० महापुराण—आचार्य जिनसन् भारतीय ज्ञानपोठ काशी
 ५१ सिद्धान्त सङ्घ
 ५२ अनुसृति
 ५३ सेनप्रश्न
 ५४ कुटुम्बार्थ
 ५५ सतिव विस्तर
 ५६ अथर्वणी सूत्र
 ५७ धौमर्मागवत
 ५८ नन्दीसूत्र
 ५९ अमरसूत्र
 ६० गृहसूत्रस्य स्तोत्र—आचार्य सप्तमचन्द्र

- ६२ बौद्ध धर्म स्थान
 ६३ बौद्ध धर्म क्या कहता है ?—कृष्णदत्त शर्मा
 ६४ बीपपात्रिक सूत्र
 ६५ नाथा भस्मकहाओ
 ६६ मोन्थोर मान्थोर विनियम सस्कृत इन्कृतिपत्र विनियमरी
 ६७ धम्मपद
 ६८ भगवद्गीता काविका
 ६९ दर्शन अने चिन्तन—य सुखनाथ जी
 १ जनप्रकाश—दिल्ली
 १ १ जनधर्म और ज्ञान—य मुनि नममल जी
 १ २ जन दर्शन के मोनिक तत्त्व—य मुनि नममल जी
 १ ३ निधीय सूत्र भाष्य (श्रुति सहित)—उपाध्याय बमर मुनि जी
 १ ४ अष्टाङ्गिका कल्प-मुद्रोपनिषद्—(गुजराती सारा भाग नवाब)
 १ ५ गुह्येय श्री रत्नमुनि स्मृति धन्य भाग्यरा
 १ ६ नाथकल
 १ ७ मरुत (पाक्षिक) दिल्ली

